आधी ज़मीन

फरवरी-मार्च 2025

विद्रोहिणी औरत पर पूंजी, राजसत्ता और धर्म का हमला

चाहत

मैं चाहती हूं
देश और दुनिया की
सभी ऊँची, बुलंद इमारतों पर
लगी हो बदलाव की यह सुंदर तस्वीर

जिसमें लड़की के हाथ में किताब हो,
जहाँ वो सपनों का आकाश थामे
खुद अपनी कहानी लिख रही हो,
अपना प्रेम, अवसाद, संघर्ष,
और अनुभव लिख रही हो।

शहर के हर चौराहे और हर इमारत पर
लगी यह तस्वीर याद दिलाती रहे
कि अब लड़कियां भी पढ़ रही हैं।

हर एक जेहन में यह स्थापित हो सके
कि हुकूमतों का दौर खत्म हुआ और

तुम्हारी परंपरागत कहानियों, कविताओं,
और ग्रंथों के अन्त के दिन आ गए !

अंशु कुमार
जेएनयू से शोध कार्य के बाद शौकिया लेखक

पार्वती योनि

ऐसा क्या किया था शिव तुमने ?
रची थी कौन–सी लीला ? ? ?
जो इतना विख्यात हो गया तुम्हारा लिंग
माताएं बेटों के यश, धन व पुत्रादि के लिए
पतिव्रताएँ पति की लंबी उम्र के लिए
अच्छे घर–वर के लिए कुवाँरियाँ
पूजती है तुम्हारे लिंग को,

दूध–दही–गुड़–फल–मेवा वगैरह
अर्पित होता है तुम्हारे लिंग पर
रोली, चंदन, महावर से
आड़ी–तिरछी लकीरें काढ़कर,
सजाया जाता है उसे
फिर ढोक देकर बारंबार
गाती हैं आरती
उच्चारती हैं एक सौ आठ नाम
तुम्हारे लिंग को दूध से धोकर
माथे पर लगाती है टीका
जीभ पर रखकर
बड़े स्वाद से स्वीकार करती हैं
लिंग पर चढ़े हुए प्रसाद को

वे नहीं जानती कि यह
पार्वती की योनि में स्थित
तुम्हारा लिंग है,

वे इसे भगवान समझती हैं,
अवतारी मानती हैं,
तुम्हारा लिंग गर्व से इठलाता
समाया रहता है पार्वती योनि में,
और उससे बहता रहता है
दूध, दही और नैवेद्य...
जिसे लाँघना निषेध है
इसलिए वे औरतें
करतीं हैं आधी परिक्रमा

वे नहीं सोच पातीं
कि यदि लिंग का अर्थ
स्त्रीलिंग या पुल्लिंग दोनों है
तो इसका नाम पार्वती लिंग क्यों नहीं ?
और यदि लिंग केवल पुरूषांग है
तो फिर इसे पार्वती योनि भी
क्यों न कहा जाए ?

लिंगपूजकों ने
चूँकि नहीं पढ़ा 'कुमारसंभव'
और पढ़ा तो 'कामसूत्र' भी नहीं होगा,
सच जानते ही कितना हैं?
हालांकि पढ़े–लिखे हैं

कुछ ने पढ़ी है केवल स्त्री–सुबोधिनी
वे अगर पढ़ते और जान पाते
कि कैसे धर्म, समाज और सत्ता
मिलकर दमन करते हैं योनि का,

अगर कहीं वेद–पुराण और इतिहास के
महान मोटे ग्रन्थों की सच्चाई!
औरत समझ जाए
तो फिर वे पूछ सकती हैं
संभोग के इस शास्त्रीय प्रतीक के–
स्त्री–पुरूष के समरस होने की मुद्रा के–
दो नाम नहीं हो सकते थे क्या?
वे पढ़ लेंगी
तो निश्चित ही पूछेंगी,
कि इस दृश्य को गढ़ने वाले
कलाकारों की जीभ
का पितृसमर्पित सम्राटों ने कटवा दी थी
क्या बदले में भेंट कर दी गईं थीं
लाखों अशर्फियां,
कि गूंगे हो गए शिल्पकार
और बता नहीं पाए
कि संभोग के इस प्रतीक में
एक और सहयोगी है
जिसे पार्वती योनि कहते हैं

नेहा नरुका
(महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय में शोध सहायक)

1
लड़कियां वो सब करना चाहती हैं
जो मर्द करते हैं
लड़कियां वो सब करती हैं
जो मर्द करते हैं
....
मगर छुप छुप के।।।

2.
लड़कियां खेती से थक चुकी हैं
वो शहर में अक्षरों की
फसल बोना चाहती हैं,
जहां पौधे उनके हिसाब से उगे।।।

3.
कम उमर लड़कियां
गांव से भाग कर आई हुई,
कितनी समझदार हैं,
वो कल बिना नागा
नौकरी खोजने जाएंगी।।।

4.
लड़कियां,
जो समझ चुकी हैं मर्द जात को
इस दुनिया की तहजीब को,
वो कल नौकरी पे जाएंगी
अपने हमदर्दों से बात करके।।।।

प्रज्ञा

आधी ज़मीन

वर्ष : 31 फरवरी, 2025

प्रधान संपादक
मीना तिवारी

संपादक मंडल
भारती एस कुमार
कुसुम वर्मा
सरोजिनी बिष्ट
तूलिका

प्रबंध संपादक
मधु

सहयोग
विभा गुप्ता

डिजाइन : विनीता वर्मा

मूल्य : एक प्रति ₹20/- (डाक खर्च अतिरिक्त)
आजीवन ₹5000/-

संपर्क : आधी जमीन कार्यालय
रामनरेश राम चंद्रशेखर स्मृति भवन
जगत नारायण रोड,
(पाटलिपुत्र हाई स्कूल के निकट)
कदमकुआं, पटना-800003

फोन : संपादकीय : 07321999884, 0941889142
प्रबंधकीय : 09771196077
email : aadhizameen@gmail.com

संपादन - संचालन पूर्णत: अवैतनिक

सम्पादकीय

इतिहास बताता है कि संपत्ति बनाने–बचाने के क्रम में पुरुष सत्ता का विकास हुआ और इस पुरुषसत्ता ने स्त्री को भी अपनी संपत्ति में शुमार कर लिया। पुरुष.सत्तात्मक व्यवस्था में औरत के श्रम और शरीर को अधीनता में रखने के लिए तरह.तरह के हिंसक तरीके अपनाए गए। औरत गुलामों की तरह बेची और खरीदी गई। फैक्ट्री में सस्ते मजदूर के रूप में रखी गई। वेश्यालयों में भेजी गई। डायन कह कर मार डाली गई। युद्ध में विजयी सेना की जीत का जश्न हो या पराजित सेना की हार की कुंठा, औरत की देह ही रौंदी गई।

भारत में पति के नियंत्रण में न रहने वाली स्त्री की हत्या को शास्त्र सम्मत बताया गया। स्त्री सती के नाम पर जलायी गई, विधवा स्त्री अधिकार विहीन की गई, पुत्रवती न होने पर घर से निकाली गई, दलित स्त्री का बलात्कार उच्च्य वर्ण का अधिकार माना गया, स्त्री शिक्षा से वंचित की गई, दहेज के लिए जलाई गई.. हिंसा और वंचना की कथा अनंत है। कुल मिलाकर स्त्रियों को सारी बुराइयों का जड़ बताया गया और उस पर होने वाली हर हिंसा और अत्याचार के लिए उसे ही दोषी ठहराया गया।

व्यवस्था यह भी की गई कि अगर स्त्री को प्रेम चाहिए तो उसे पुरुष के अनुरूप ढलना होगा। घृणा में ही नहीं प्रेम में भी हिंसा बर्दाश्त करनी होगी, जिसे स्त्री का, त्याग, दयालुता, ममता कह कर महिमा मंडित किया जाएगा। उसके भोजन, उसके पहरावे, उसके सजने–संवरने, उठने–बैठने हर चीज का मापदंड निर्धारित किया गया जिस पर उसे खड़ा उतरना होगा। स्त्री सिर से पैर तक ढंकी रहेगी या घुटनों के ऊपर का स्कर्ट पहनेगी, नंगे पांव रहेगी या पैरों में लोहे की जूतियां पहनेगी अथवा स्टिलेटो, उसकी थाली में कैसा और कितना भोजन होगा, उसके श्रम की क्या कीमत होगी– यह सब तय करने का अधिकार उसके पास नहीं होगा।

स्त्री हिंसा सामंतशाही के दौर में रही, उपनिवेशों के दौर में रही और अब गणतंत्र के दौर में भी जारी है। गणतंत्र में जहां हर व्यक्ति के नागरिक अधिकारों की बात है वहां भी स्त्री अभी कमतर नागरिक बनी हुई है। गणतंत्र में स्त्री हिंसा और वंचना रोकने के नाम पर सरकारों ने कानून बनाए, अंतरराष्ट्रीय कांफ्रेंस और कन्वेंशन हुए और हो रहे हैं। लेकिन, इन्हीं कन्वेंशनों से यह तथ्य भी सामने आता है कि सुधार की गति यदि यही रही तो महिलाओं पर हिंसा रुकने में कई सौ साल लगेंगे। लेकिन, समाज के विकास क्रम का दूसरा पहलू यह है कि औरत ने कभी मैदान नहीं छोड़ा। समय के साथ उसकी समझ, उसकी ताकत में बढ़ोतरी हुई है। उसने क्रमशः अपनी जगह बनाई है, निर्णय लेने की क्षमता विकसित की है और आजादी की लड़ाई लड़ने को आगे बढ़ रही है।

अन्दर के पन्नों में...

- छात्राओं को मिला पैंट–शर्ट पहनने का अधिकार
- महिला हिंसा : वर्तमान का इतिहास और इतिहास का वर्तमान
- डायन दहन : विद्रोहिणी औरत पर पूंजी राजसत्ता और धर्म का हमला
- नर से निकली नारी – ट्रांसजेंडर महिला, संजना साइमन
- हेमा समिति रिपोर्ट : मलयालम फिल्म उद्योग में महिलाओं की स्थिति
- स्टिलेटो
- गाजा नरसंहार

खबदरों की दुनिया

समलिंगी विवाह को थाइलैंड ने मान्यता दी

समलिंगी विवाह को मान्यता देने के लिए थाइलैंड में पिछले 1 साल से कानूनी प्रक्रिया चल रही थी और अब ऐसे विवाहों को मान्यता दे दी गई है। ऐसा करने वाला थाईलैंड एशिया का तीसरा बड़ा देश है। अमेरिका और यूरोप के कई देशों में सेम सेक्स मैरिज को कानूनी मान्यता है। एशिया में ताइवान ने सबसे पहले 2019 में समलिंगी विवाह को मान्यता दी। कुछ सीमित अधिकारों के साथ नेपाल में भी ऐसे विवाह मान्य हैं।

भारत में एलजीबीटी समुदाय लंबे समय से यह मांग उठा रहा है। सुप्रीम कोर्ट में यह मुकदमा चला। सुप्रीम कोर्ट ने यह माना कि समलैंगिक विवाह पश्चिम से आयातित विचार नहीं है और न ही यह सिर्फ उच्च वर्ग का फैशन है बल्कि भारतीय समाज और संस्कृति में पहले से ऐसे विवाहों को मान्यता प्राप्त रही है। अपने फैसले में एक लंबे–चौड़े सकारात्मक नोट के बावजूद सुप्रीम कोर्ट ने ऐसे विवाह को और विवाहित जोड़ों के संवैधानिक अधिकारों को मान्यता नहीं दी और संसद को इस विषय में कानून बनाने को कहा।

ट्रंप के आदेश को महिला बिशप ने चुनौती दी

अमेरिका को फिर से महान बनाने की नारेबाजी के साथ डोनाल्ड ट्रंप दूसरी बार राष्ट्रपति पद पर आसीन हो गए हैं। राष्ट्रपति पद की शपथ लेने के बाद उन्होंने भारतीय सहित अन्य प्रवासियों को अमेरिका से बाहर निकालने की घोषणा की। उन्होंने अमेरिका के 155 साल पुराने नागरिकता कानून को बदलने की कोशिश भी की, जिस पर फेडरल जज ने रोक लगा दी है।

ट्रंप ने अपने भाषण में कहा कि अमेरिका में सिर्फ दो ही जेंडर होंगे महिला और पुरुष। उनकी इस घोषणा के खिलाफ भी कई राज्य अदालत में चले गए हैं। ट्रंप के इस आदेश का सबसे पहले अमेरिका की महिला बिशप ने कड़ा विरोध किया। बिशप मैरिएन एडगर बुडे ने ट्रंप के सामने बोलते हुए कहा कि उनके आदेश से समलैंगिक, लेस्बियन और ट्रांसजेंडर डरे हुए हैं। ऐसे लोग अमेरिका में हर जगह हैं। ये डेमोक्रेटिक, रिपब्लिकन और स्वतंत्र परिवार के बच्चे हैं जो अपने जीवन के लिए डरे हुए हैं। उन्होंने ट्रंप से अपना आदेश वापस लेने की अपील की।

भारत ने खो-खो विश्व कप जीता

खो–खो को एक वैश्विक खेल का दर्जा मिल गया है। भारत में 13 जनवरी से 19 जनवरी तक इसका पहला आयोजन हुआ। 13 जनवरी को नई दिल्ली के इंदिरा गांधी स्टेडियम में इसका उद्घाटन हुआ। खो–खो के पुरुष और महिला दोनों स्पर्धा में भारत ने नेपाल को हराकर जीत हासिल की। इसमें 23 देशों के खिलाड़ी हिस्सा ले रहे थे। इन देशों से 49 टीमें, 20 पुरुषों की और 19 महिलाओं की टीमें शामिल थीं।

खो–खो एक दक्षिण एशियाई खेल है। इसकी शुरुआत भारत के महाराष्ट्र में मानी जाती है। राजशाही के जमाने में ये रथों पर सवार होकर खेला जाता था। व्यवस्थित नियमों के साथ पहली बार इसे 1934 में पुणे में खेला गया। 1936 में बर्लिन ओलंपिक में इसका प्रदर्शन हुआ लेकिन यह अब तक ओलंपिक खेलों में शामिल नहीं हुआ है। 1996 में कोलकाता में पहली बार एशिया चैंपियनशिप का आयोजन हुआ था और अब पहली बार विश्व कप के रूप में खेला गया। भारत की महिला टीम की कप्तान प्रियंका इंगले हैं। महिला टीम ने 2016 में एशियाई चैंपियनशिप में स्वर्ण पदक जीता था। भारत के ओलंपिक संघ ने कहा है कि वह इस खेल को ओलंपिक में शामिल कराने के लिए प्रयास कर रहा है। भारत के ओलंपिक संघ का शर्मनाक रवैया हमलोगों ने कुश्ती महिला खिलाड़ियों प्रति देखा है। फिर भी, हमारे देश के हर खेल के खिलाड़ी अपने जुझारू पन से ही आगे बढ़ रहे हैं।

भाजपा देश की सबसे अमीर पार्टी

चुनाव आयोग को दिए गए रिपोर्ट के अनुसार भाजपा के पास 31 मार्च 2024 तक 7113.80 करोड़ रुपए का नगद और बैंक बैलेंस है जबकि कांग्रेस के पास 857. 15 करोड़ा रुपए हैं। भाजपा को 2022–23 में 1294.15 करोड़ रुपए चंदा मिला था लेकिन 23–24 में यह बढ़ कर 7113.80 करोड़ हो गया! अब जनता पहेली बुझती रहे–यह चंदा आता कहां से है, जाता कहां है!

छात्राओं को मिला पैंट–शर्ट पहनने का अधिकार

केरल में गवर्नमेंट बॉयज हायर सेकंडरी स्कूल की सातवीं की छात्रा जन्नत समावीरा ने जेंडर निरपेक्ष स्कूल यूनिफॉर्म पहनने का अधिकार हासिल किया। इस अधिकार को हासिल करने में उसे दो साल लग गए जो दिखाता है कि छोटे–छोटे सुधार और सुविधा हासिल करने के लिए आज भी लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ती है।

समीरा जिस समय पांचवें क्लास में थी, उस समय ही वह लड़कों की तरह का यूनिफॉर्म पहनना चाहती थी। लड़कियों के पहरावे सलवार कमीज के बदले लड़कों की तरह वह फुल पैंट और हाफ शर्ट पहनना चाहती थी। अपनी बेटी की इच्छा पूरी करने के लिए समीरा की मां आयशा पी जमाल ने यह मामला कई बार अभिभावक – शिक्षक बैठक में उठाया लेकिन स्कूल प्रशासन ने उसकी मांग स्वीकार नहीं की। आयशा पी जमाल वकील हैं, उन्होने धैर्य नहीं खोया और सरकार के पास आवेदन दिया। वह लगातार इस मामले को उठाती रहीं। अंततः मलापुरम के शिक्षा पदाधिकारी ने सहमति देते हुए निर्देश जारी किया। समीरा की जीत से अन्य लड़कियों को भी यह सुविधा मिल गई है कि वे अपनी मर्जी के अनुसार सलवार कमीज या पैंट और हाफ शर्ट पहन सकती हैं।

कोलकाता के स्टार थिएटर का नाम बदलकर बिनोदिनी थिएटर रखा गया

बंगाली रंगमंच की पहचान, इसकी महान हस्ती नटी बिनोदिनी दासी से जुड़ी हुई है। बांग्ला में नटी का मतलब अदाकारा होता है और बिनोदिनी ने अपने दौर में बंगाल के रंगमंच को नई पहचान दी थी। बिनोदिनी ने उस समय रंगमंच पर अपनी पहचान बनाई जब महिलाओं का अभिनय के क्षेत्र में आना अच्छा नहीं माना जाता था और नाटकों में पुरुष ही महिलाओं का किरदार निभाते थे।

विनोदिनी का जन्म 1863 में रेड लाइट इलाके में हुआ था। उन्होंने वहीं संगीत की शिक्षा गंगाबाई से हासिल की। 12 वर्ष की उम्र में उन्होंने पहला नाटक किया। बिनोदिनी अपने गीत, नृत्य और शानदार अदाकारी के कारण बहुत लोकप्रिय थीं और अकेले उनके नाम पर थिएटर में दर्शकों की भीड़ जमा हो जाती थी।

उस वक्त के थिएटर के कुछ बड़े और स्थापित कलाकारों ने रंगमंच को आगे बढ़ाने के लिए जमींदारी संरक्षण से अलग स्वायत्त थिएटर की जरूरत महसूस की। इसके लिए उन्होंने बिनोदिनी से मदद मांगी। बिनोदिनी के प्रयास से कोलकाता के एक बड़े व्यवसायी गुरमुख राय ने ₹50000 देने की पेशकश की, लेकिन शर्त रखी कि बिनोदिनी उनकी दासी बनकर रहे। बिनोदिनी ने, जो किसी और से प्रेम करती थी, अपने प्रेम को त्याग कर थिएटर के निर्माण के लिए गुरमुख राय की दासी बनना स्वीकार कर लिया लेकिन नटी बिनोदिनी दासी ने शर्त रखी कि कोलकाता के गार्डन स्ट्रीट में जो थिएटर तैयार होगा उस थिएटर का नाम बिनोदिनी के नाम पर रखा जाएगा। इस पर सभी ने सहमति दी लेकिन जब थिएटर बनकर तैयार हुआ तो उसका नाम स्टार थिएटर रखा गया। यह देखकर बिनोदिनी का दिल टूट गया। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा की उनके प्रति रंगमंच के कलाकारों का प्रेम महज दिखावा था और थिएटर बनाने के लिए उनका इस्तेमाल किया गया। बिनोदिनी दासी इतनी आहत हुई कि उन्होंने 23 वर्ष की उम्र में रंगमंच छोड़ दिया।1941 में उनका देहांत हो गया। बिनोदिनी ने अपनी आत्मकथा 'आमार कोथा' और 'आमार अभिनेत्री जीबोन' लिखा। अपनी किताबों में उन्होंने लिखा कि किस तरह उन्हें बार बार इस्तेमाल किया गया और धोखा देने की कोशिश हुई ।

बाद में गुरमुख राय ने स्टार थिएटर को बेच दिया। थिएटर को ध्वस्त कर दिया गया और फिर दूसरी जगह स्टार थिएटर बनाया गया। इस तरह जिस स्टार थिएटर को अब बिनोदिनी थिएटर का नाम दिया गया है वह एक सिनेमा हॉल है और बिनोदिनी का बनाया हुआ थिएटर नहीं है। लेकिन, बिनोदिनी के नाम को सम्मान दिया गया यह अच्छा है।

●

सावित्रीबाई फुले और फातिमा शेख को याद किया

ऐपवा ने सावित्रीबाई फुले और फातिमा शेख की जयंती के अवसर पर 3–9 जनवरी तक बहनापा अभियान चलाने का निर्णय लिया था। यह अभियान काफी सफल रहा। यह सात राज्यों में चलास एक सप्ताह के इस अभियान में साम्प्रदायिक नफरत के खिलाफ महिलाओं की एकता और अंधविश्वासों के खिलाफ महिलाओं में जागृति लाने के लिए स्थानीय स्तर पर बैठक, गोष्ठी, प्रदर्शन आदि कार्यक्रम किए गए। शिक्षा के लिए समान स्कूल प्रणाली और केजी से पीजी तक लड़कियों के लिए फ्री शिक्षा की मांग की गई। इस अभियान के तहत देश भर में 200 से अधिक कार्यक्रम हुए जिसमें देश भर में महिलाओं और छात्राओं ने बड़ी संख्या में भाग लिया। इस अभियान के तहत दिल्ली, राजस्थान, झारखंड, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, बिहार आदि राज्यों में कार्यक्रम हुए।

बिहार ऐपवा राज्य परिषद नै 100 स्थानों पर कार्यक्रम आयोजित करने का निर्णय लिया गया, यहां यह 115 जगहों पर आयोजित हुआ।

मुनाफे की ही नहीं, मजदूरों की चिन्ता भी हो

निर्माण क्षेत्र की कंपनी लार्सन ऍंड टुब्रो के चेयरपर्सन एस एन सुब्रमण्यम ने अपनी कंपनी की एक आंतरिक बैठक में कर्मचारियों से सप्ताह में 90 घंटे काम करने की वकालत की उनके वक्तव्य की चौतरफा आलोचना के बाद उनके प्रवक्ता ने सफाई देते हुए कहा कि देश के विकास के लिए, असाधारण परिणामों के लिए असाधारण प्रयासों की जरूरत है। जाहिर है, सुब्रमण्यम महोदय के लिए देश का विकास और असाधारण परिणाम का मतलब अपनी कंपनी का विकास और असाधारण मुनाफा है।

सुब्रमण्यम ने कर्मचारियों को संबोधित करते हुए कहा था। रविवार को कितनी देर बैठकर आप अपनी पत्नी को निहार सकते हैं? इसलिए ऑफिस आओ और काम पर लगो!

सुब्रमण्यम ने यह 'मजाक' अगर पुरुष कर्मचारियों को ध्यान में रख कर किया (पता नहीं उस बैठक में महिला कर्मचारी थीं या नहीं) तो पहली बात की उन कर्मचारियों की बीवियों से पूछा जाए कि रविवार के दिन खुद उस स्त्री के पास इतना समय होता है कि वह आराम से बैठकर अपने पति को निहारती रहे? रविवार को तो पत्नियों का काम बढ़ जाता है। पति और बच्चों की फरमाइश का खाना बनाने, सफाई करने, रिश्तेदारों-दोस्तों का स्वागत करने वगैरह-वगैरह में उसे सिर उठाने की फुर्सत नहीं होती। सुब्रमण्यम के वक्तव्य से यह भी साफ है कि वह यह नहीं समझते कि घर के काम काज, बच्चों की देखभाल के काम में पुरुषों को भी हाथ बंटाना चाहिए और यदि पति–पत्नी दोनों नौकरीपेशा हैं तो घरेलू काम में बराबर की सहभागिता होनी चाहिए।

पूंजीवादी व्यवस्था मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी देती है और मजदूर पत्नी से उम्मीद करती है कि काम से थककर लौटा उसका पति दूसरे दिन तरोताजा होकर वापस काम पर जा सके इसके लिए उसके भोजन और आराम की सभी जरूरतों को वह पूरा करे। मजदूर के परिवार की औरतों के इस घरेलू श्रम को औरतों का कर्तव्य बता कर महिमा मंडित किया जाता है और अवैतनिक रखा जाता है।

ऑक्सफेम की रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया भर में हर दिन महिलाएं 1250 करोड़ घंटे अवैतनिक काम करती हैं। अगर इसका वैल्यू निकाला जाए तो 10.8 लाख करोड़ अमेरिकी डॉलर होगी। पूंजीपति मजदूरों की पत्नियों से यह काम मुफ्त में करवाता है और मजदूरों के हिस्से की इस राशि को हड़प कर अपना मुनाफा बढ़ाता है।

दूसरी तरफ जब कोई औरत एक मजदूर के रूप में स्वयं काम पर जाती है तो उसे समान काम के लिए पुरुषों से कम वेतन दिया जाता है इस नाम पर कि घर का असली कमाऊ सदस्य तो पुरुष होता है।

भारत में बेरोजगारी और अच्छे अवसरों की कमी बना कर रखी गई है जिसके कारण मजदूरों में अपनी नौकरी बचाए रखने के लिए पूंजीपति जबरदस्त प्रतियोगिता का माहौल पैदा करता है और उनसे ज्यादा से ज्यादा काम लेता है, इसके कारण कंपनियों और संस्थानों में मध्यम स्तर के पदों पर कार्यरत महिला कर्मचारी बहुत आगे नहीं बढ़ पाती। क्योंकि, उसे घर परिवार के लिए छुट्टी लेनी पड़ती है, अगर उसे अपने करियर में आगे बढ़ने की ख्वाहिश है तो अपनी शादी या बच्चों की योजना लगातार टालनी पड़ती है।

मजदूरों से अधिक घंटे काम की वकालत करने वाले मजदूरों की मजदूरी, कार्यस्थल पर सुरक्षा, बेहतर कार्य स्थितियों, मजदूरों की पारिवारिक–सामाजिक जरूरतों आदि की बात नहीं कर रहे हैं। इस बात की चर्चा नहीं हो रही है कि मजदूरों का जीवन, उनकी क्षमता सिर्फ मालिक के लिए मुनाफा पैदा करने के लिए नहीं होनी चाहिए बल्कि मजदूरों को अपने काम का वाजिब दाम मिलना चाहिए। उनके आवास, पेंशन, स्वास्थ्य सुविधाओं, उनके बच्चों की शिक्षा आदि की भी चिंता की जानी चाहिए।

सुब्रमण्यम के अनुसार वह रविवार को भी काम करते हैं इसलिए उनके मजदूरों को भी रविवार को काम करना चाहिए। एलएनटी के चेयरपर्सन के रूप में सुब्रमण्यम का वेतन 51 करोड़ रुपए सालाना है और अपनी कंपनी में काम करने वाले मजदूरों से वे 535 गुना अधिक कमाते हैं। आंकड़े यह भी बताते हैं कि कंपनी द्वारा अत्यधिक मुनाफा कमाने पर भी मजदूरों की मजदूरी में कोई खास बढ़ोतरी नहीं होती है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के 2023 की रिपोर्ट के अनुसार भारत के मजदूर दुनिया में 10 सबसे अधिक काम करने वाले देशों में सातवें स्थान पर हैं। इतना अधिक काम करने के बावजूद भारत के सामान्य मजदूरों की स्थिति दयनीय बनी हुई है। आज 90% मजदूर असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं और इन मजदूरों के 94 प्रतिशत की आमदनी ₹10000 प्रति माह से भी कम है। अगर हम महिला मजदूरों को देखें तो स्थिति और भी भयावह है उन्हें बाहर काम करके घर लौटने पर खाना बनाना, बच्चों और परिवार की देखभाल का काम भी करना पड़ता है।

8 घंटे काम के अधिकार के लिए दुनिया में मजदूरों को लंबी लड़ाई लड़नी पड़ी। भारत में 1946 में बाबा साहब अंबेडकर के संशोधन प्रस्ताव पर 1935 के फैक्ट्री एक्ट में संशोधन हुआ और 8 घंटे (48 घंटे साप्ताहिक) काम का नियम लागू हुआ। इक्कीसवीं सदी में, निजीकरण के दौर में हम लगातार मजदूरों के अधिकारों की अवहेलना होते देख रहे हैं। गरीब और पिछड़े देशों में मजदूरों से अधिक घंटे काम लिया जाता है। अधिक काम मतलब सस्ता श्रम, ये सस्ता श्रम पूंजीपतियों को खूब पसंद है। भारत में पूंजीपति अपना मुनाफा कमाने के लिए बेरोजगारी की चरम स्थिति का लाभ उठाकर कम मजदूरी और अधिक घंटे काम लेने की नीति पर चल रहे हैं। पहले इंफोसिस के मालिक नारायण मूर्ति ने 70 घंटे काम की बात की और अब सुब्रमण्यम सप्ताह में 90 घंटे काम की बात कर रहे हैं। भाजपा के एक विचारक और पूर्व सांसद तरुण विजय ने कहा कि हमारे देश की संस्कृति कर्मयोगी की है। उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि हमारे प्रधानमंत्री बिना किसी छुट्टी के लगातार काम कर रहे हैं। छुट्टी तो पश्चिमी अवधारणा है, इसलिए भारत के मजदूर कर्म योगी बनें, छुट्टी भोगी नहीं।

यह सिद्ध बात है कि मजदूरों को जब तक अपने लिए समय नहीं मिलेगा, उनकी रचनात्मकता नहीं बढ़ेगी, उनकी उत्पादकता भी नहीं बढ़ेगी। इसलिए विकसित देशों में काम के घंटे कम किए

जा रहे हैं। दुनिया के ज्यादा उत्पादकता वाले देशों में 35 से 40 घंटे साप्ताहिक कार्य दिवस है।

मोदी सरकार लगातार पूंजीपतियों के लिए दयावान बनी हुई है। श्रम कानूनों को पूंजीपतियों के हित में बदला जा रहा है। मजदूरों के अधिकारों में कटौती की जा रही है। निजी क्षेत्रों में महिला मजदूरों के मातृत्व अवकाश के अधिकार को कमजोर किया जा रहा है। कार्यस्थल पर क्रेज, यौन उत्पीड़न से बचाव के अधिकार की अवहेलना की जा रही है। सरकार की मजदूर विरोधी नीतियों से रोजगार दाताओं का मनोबल बढ़ता जा रहा है और वे उत्साहित होकर रविवार की छुट्टी भी खत्म करना चाहते हैं! सरकार द्वारा ऐसी कंपनियों और संस्थाओं की तत्काल जांच होनी चाहिए और साप्ताहिक 48 घंटे कार्य अवधि का उल्लंघन करने वाले पूंजीपतियों और रोजगारदाताओं के खिलाफ कार्रवाई की जानी चाहिए। ●

महिला हिंसा : वर्तमान का इतिहास और इतिहास का वर्तमान

◆ **सुधा चौधरी**

बिना आर्थिक स्वाधीनता के किसी व्यक्ति की आजादी वैसी ही है जैसी किसी ऐसे व्यक्ति को बाजार में खरीदने की आजादी दो जिसकी जेब खाली है। और एक ऐसे व्यक्ति को बोलने की आजादी दो जिसके मुँह में जीभ नहीं है।
जर्मेन गेयर

महिला हिंसा का इतिहास उतना ही पुराना है जितना महिला को सार्वजनिक जीवन से निकाल कर घर की चार दिवारी में कैद कर देने का इतिहास है। जो नारी जाति की ऐतिहासिक हार थी।
ऐंगल्स

महिला हिंसा की प्रकृति और उसकी ऐतिहासिक जड़ों की सही शिनाख्त आज के महिला आंदोलन की महती जरूरत है। महिलाओं पर तरह–तरह की हिंसा कोई स्वायत परिघटना नहीं है। वह विशाल सामाजिक तंत्र और उसकी रीति–नीति से नालबद्ध है। इसलिए, आज महिला हिंसा पर सोचने व उसे रोकने के लिए संघर्ष करने वाली शक्तियों के लिए हिंसा के सामाजिक–ऐतिहासिक कारणों का सही विश्लेषण व समझ बनाना जरूरी बन जाता है। सही दिशा व सोच से ही हम इस बात की थाह ले पाएँगे कि सड़क से लेकर संसद के गलियारों तक महिला हिंसा पर चिंता/दुःख/सहानुभूति दिखाने से लेकर उसकी रोकथाम सम्बंधी नियम–कानून बनाने, गोष्ठियाँ, संवाद आयोजित करने,सरकारी योजनाओं, वादों, घोषणाओं के बावजूद स्थिति उलट कैसे दिखाई देती है। महिलाओं पर हिंसा क्रूर से क्रूरतम रूप में क्यों बढ़ती जा रही है।

हिंसा एक नकारात्मक शब्द है जिसमें ताकत, दमन, उत्पीड़न, शोषण,अपमान, बहिष्कार, पराधीनता, गैर–बराबरी, वंचनाएँ, वर्जनाएँ, गरिमा को कमत्तर करना, आक्रामक बल प्रयोग, वर्चस्व, शक्तिशाली होने का अहंकार, पीटना, गाली देना, जलालत, विशेषाधिकार, नफरत, संप्रभुता पर हमला, जैसे दुर्व्यवहार हैं। स्वामित्व भाव के इन आपसी रिश्तों में मानवीय सम्बन्धों व व्यवहार के लिए कोई जगह नहीं रहती है जो बुनियादी स्वरूप में शक्ति–संघर्ष है। महिलाओं के संदर्भ में, जहां सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं, की स्थिति बनी रहती है। जो महिला को हीनत्तर बनाती है। महिला को उसके तमाम नागरिक अधिकारों से वंचित कर परले दर्जे की गुलाम बना दिया गया है जिसके चलते पर–निर्भरता और बदहाली का जीवन जीना ही उसकी नियति है। जो अपने ऐतिहासिक पड़ावों में – सामन्तवाद से आधुनिक पूंजीवाद तक विभिन्न रूपों में अंतर्ग्रंथित रही है। असल में,मानव का जीवन बहुआयामी और बहुस्तरीय होता है। जिसका दायरा परिवार से लेकर समाज और वैयक्तिक से लेकर सामाजिक तक रहता है। तो स्वभाविक रूप से महिला हिंसा के भी इतने ही स्तर, रूप और आयाम हैं।

मोटे तौर पर महिलाएँ दो तरह की हिंसा की शिकार हैं–संरचनात्मक –सांस्थानिक और व्यवहारिक। वर्तमान पारिवारिक ढाँचा, सांस्कृतिक मूल्य, अर्थतंत्र में कमजोर इकाई, सामाजिक जीवन में निर्णय की प्रक्रिया में अलगाव की स्थिति, राजनीतिक सत्ता में भागीदारी के अवसरों की अनुपलब्धता, बुनियादी सुविधाओं में असमानता, विशेष अवसरों में असमानता, पेशागत असमानता, स्वामित्व असमानता, घरेलू असमानता, शैक्षिक असमानता, इत्यादि सांस्थानिक हिंसा के रूप हैं। जिसके स्पष्टतः भावात्मक, पारिवारिक, वैचारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, शारीरिक–मानसिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, जातीय, धार्मिक, इत्यादि रूप देखे जा सकते हैं। सामाजिक श्रम–विभाजन में महिला का कार्य घरेलू कामकाज निबटाना है जिसका कोई आर्थिक मूल्य नहीं है। रात–दिन काम करने के बावजूद वह अपनी हर जरूरत व इच्छा पूर्ति के लिए पुरुष के मातहत रहती है जो आर्थिक हिंसा का दंश झेलने के लिए अभिशप्त है। जीवन का परम लक्ष्य केवल परिवार की देखभाल और वंश को आगे बढ़ाना है। यही शिक्षा और यही सम्मान हासिल करने का मापदंड है। लड़के–लड़की के जन्म के समय की खुशियों और बचपन में पालन–पोषण से लेकर खान–पान, रहन–सहन, शिक्षा–दीक्षा, खेलकूद के अवसरों की उपलब्धता, व्यवहार करने के तौर–तरीकों तक में, भेदभाव किया जाना पारिवारिक हिंसा का सूक्ष्म रूप है जो संस्कृति के रूप में कार्य करता है फलतः हिंसा लगती ही नहीं है। और उसके आधार पर उसका सम्पूर्ण सामाजिक जीवन 'साधन' के रूप में परिभाषित किया जाना सामाजिक हिंसा है। जिसे पराये घर की अमानत,डोली व अर्थी के बीच की विकल्पहीन दुनिया की समाज दृष्टि में देखा जा सकता है। शादी के बाद ससुराल में दहेज हिंसा, दहेज–हत्या, परिवारजनों द्वारा बलात्कार, कन्या भ्रूणहत्या, से लेकर कामकाज का दायित्व,उसके जीवन की प्राथमिकताएँ, उसका आदर्श, पारिवारिक मामलों में निर्णय करने में भूमिका, जीवन की

खुशियों के मापदंड सब कुछ की जड़ों में लैंगिक हिंसा है। सांस्कृतिक मूल्य–परम्पराएँ महिला को अधिकारहीनता में रखकर केवल कर्तव्य की याद दिलाने के इर्द–गिर्द घूमते हैं। जातीय हिंसा का क्रूर रूप अपने विवाह में चयन की आजादी पर खाँप–पंचायतों के हत्या से लेकर पूरे परिवार को गाँव से निकालने, आर्थिक दंड देने, सामूहिक बलात्कार करने जैसी जघन्य हिंसा है। देवदासी, सती, डायन अनहोनी का डर, परलोक का भय, इत्यादि धार्मिक हिंसा के रूप हैं। जिसमें पति को ही भगवान बना दिया। अर्थतंत्र में श्रम का कम मूल्य,कार्य स्थलों पर यौन–उत्पीड़न, आरक्षित मजदूर, उपभोग की वस्तु के रूप में देखा जाना आर्थिक हिंसा है। वेदों से लेकर, उपनिषदों, संहिताओं, महाकाव्यों, साहित्यिक ग्रंथों, धर्म ग्रंथों–सांस्कृतिक रीति–रिवाजों में महिलाओं की इस लैंगिक हिंसा को न केवल ईश्वरीय–न्याय, दिव्य सत्ता का आदेश, कर्मफल, इत्यादि के रूप में महिमामंडित कर सहज–स्वीकार्य बना दिया गया बल्कि यही कमजोर सामाजिक दर्जा महिला का आदर्श दर्जा बता दिया गया। इस हिंसक सामाजिक मनोविज्ञान के खिलाफ जब महिलाएँ आवाज उठाती हैं तो उन्हें बदनाम –अपमानित कर हर तरह से रोकने की भरपूर कोशिश की जाती है। मीरा–द्रोपदी के प्रति निंदात्मक–आलोचनात्मक भाव और सीता–सावित्री का यशोगुणगान इसके ठोस रूप हैं। जहां महिला के मनुष्य होने का भाव ही सिरे से खारिज है। जिसमें जाति,धर्म और सामंती मूल्य पितृसत्ता को मजबूती देने में हथियार का काम करते हैं। भँवरी भटेर से लेकर बिलकिस बानो तक की न्याय का सवाल,पहलवान खिलाड़ियों के साथ अपमानजनक व्यवहार,बलात्कारियों को राजनैतिक संरक्षण देने, इज्जत के नाम पर जघन्य अपराध, महिलाओं की जायज माँगों को तरह–तरह के कुतर्कों से पीछे धकेलने की कुत्सित चालें, महिलाओं की बढ़ती राजनैतिक दावेदारी को विचलित करने के हथकंडों में यह सत्ता चरित्र देखा जा सकता है।

महिला–हिंसा मुक्ति की दिशा क्या हो?

महिला के साथ हिंसा का इतिहास बताता है कि इसकी शुरुआत तब हुई जब निजी सम्पति की अवधारणा के साथ स्वामित्व का सवाल उठा। जिसने उतराधिकार के प्रश्न को जन्म दिया और इस हेतु रक्त की शुद्धता की माँग ने यौनिकता की पवित्रता को केंद्र बना दिया। परिवार की इज्जत, पुरुष का सम्मान, उसकी मर्दाँनगी सब कुछ महिला की यौनिक पवित्रता से जोड़ दिया गया। जिनके चलते महिला के लिए एक निष्ठा विवाह अस्तित्व में आया जो अपने गर्भ में पुरुष–वर्चस्व के बीज छिपाए हुए था। महिला को सार्वजनिक उत्पादन प्रक्रिया से बहिष्कृत कर दिए जाने से सामाजिक जीवन की सक्रियता के विशाल दायरे में उसका प्रवेश वर्जित हो गया। फलतः सामाजिक जीवन में भी वह अलगाव में पड़ गई। स्त्री–पुरुष के बीच गैर–बराबरी के इन रिश्तों की बुनियाद पर जिस पारिवारिक और वैवाहिक संस्थाओं का निर्माण किया वो महिला को उस हक से वंचित करते हैं जो उसे इस समाज की सक्रिय निर्माणक इकाई होने के नाते मिलने चाहिए थे। इसलिए, वर्तमान पारिवारिक–सामाजिक संस्थाएँ जो पितृसत्तात्मक हैं, का विनाश करने का अर्थ इन संस्थाओं का समूल उन्मूलन करना नहीं है। समतामूलक सामाजिक तंत्र में भी परिवार जैसी संस्थाओं का अस्तित्व रहेगा किंतु उनका स्वरूप व ढाँचा, उसमें महिला की भूमिका–सामाजिक दर्जा इत्यादि एक भिन्न स्तर पर होंगे।

विधमान तंत्र में पुरुष के इस मालिकाने हक की स्थिति ने महिला को जहां 'इंसान' से पुरुष की निजी सम्पति, वाहक, अनुचरी, साधन बना दिया वहीं पुरुष को कर्ता, धर्ता, नियंता, स्वामी, मालिक की स्थिति में ला दिया जिसने महिला के शारीरिक–मानसिक जीवन को पुरुष के अधीन बना दिया। यह गुलामी महिला हिंसा का सबसे प्रारम्भिक रूप है। जिसके चलते पुरुष पर एकनिष्ठपत्नी विवाह का सिद्धांत आज तक लागू नहीं है। महिला की इस दोयम दर्जे की सामाजिक स्थिति को पुख्ता, कठोर और ईश्वरीय न्याय के रूप में महिमामंडित करने के लिए अनेकानेक सांस्कृतिक परम्पराएँ विकसित की गई। वैचारिक–मानसिक हिंसा के ये सूक्ष्म रूप हैं। इससे रचित मनोविज्ञान ने न केवल महिलाओं के श्रम और शरीर के शोषण के कुचक्र को जीवन की सहज स्थिति बना दी बल्कि सोच–समझ के स्तर तक को पंगु करने केलिए शिक्षा के नागरिक अधिकार तक से वंचित कर दिया। ऐसा सामाजिक परिवेश महिला को सामाजिक और मानसिक तौर पर निहत्था करता है।

इसलिए महिला हिंसा वर्गीय सामाजिक ढाँचे का उप–उत्पाद है जिसमें पुरुष सत्ता व संसाधनों का मालिक है। सामाजिकता का पूरा ताना–बाना इसी सूत्र से नियंत्रित और संचालित होता है। इस स्थिति ने पुरुष–स्त्री के सम्बन्धों में पायी जानेवाली 'प्राकृतिक भिन्नता' को 'सामाजिक विषमता' में बदल देने की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। वर्गीय सामाजिक तंत्र ने जिस पारिवारिक – वैवाहिक संस्थानों का ईजाद किया वह महिला को पराधीन और पुरुष को शक्तिशाली सामाजिक दर्जा देता है। जिसमें भारतीय संदर्भ में जाति और धर्म इन गैर–बराबरी के रिश्तों को और मजबूती प्रदान करते हैं।अंतर्जातीय और अंतरधार्मिक वैवाहिक युगलों का कत्लेआम और प्रताड़नाएं इसके जीवंत रूप हैं। सिद्धांत में 'देवी' और व्यवहार में कुलटा जिसको स्वतंत्रता देने का अर्थ सब कुछ खत्म कर देना है,की महिला–दृष्टि के बीज सूत्र यही हैं।

इसलिए आज के महिला स्वाधीनता और हमारे आंदोलन की दिशा विधमान पितृसतात्मक पारिवारिक ढाँचे, विवाह प्रणाली और उसको मजबूती देने वाले सांस्कृतिक मूल्यों, से लड़ते हुए भी समाज में चल रहे बड़े वर्ग–संघर्ष के साथ अपने आपको जोड़ने की होनी चाहिए।वर्गीय संघर्ष को निरापद कर केवल महिला हिंसा से मुक्ति की बात करना एक अधूरी लड़ाई लड़ना होगा। महिलाओं के सत्ता और सम्पति में भागीदारी और हिस्सेदारी के तमाम प्रश्नों को व्यापक सामाजिक तंत्र के दायरे में ही देखना व समझना आंदोलन की सफलता की पूर्वशर्त है।

भारत में महिला हिंसा का वर्तमान दौर

16 दिसंबर 2012 को फिजियोथैरेपी की एक छात्रा उस समय गैंगरेप और क्रूरतम शारीरिक हमले की शिकार हुई थी जब वह अपने दोस्त के साथ एक बस में यात्रा के लिए सवार थी। देश उस शहीद लड़की को निर्भया के नाम से जानता है। सितंबर 2024 में कोलकाता के आर जी कर अस्पताल में एक डॉक्टर रात की ड्यूटी के दौरान उसी तरह की क्रूरता, बलात्कार और हत्या की शिकार बनाई गई। इसे अभया नाम दिया गया। निर्भया से अभया तक इन 12 वर्षों के कालखंड को महिला हिंसा के संदर्भ से हम कैसे देखें?

2012 की घटना के बाद पूरे देश में लोगों का गुस्सा फूटा। निर्भया के लिए न्याय की मांग करते हुए देश के शहरों ही नहीं ग्रामीण इलाकों में भी प्रदर्शन हुए और महिलाओं की सुरक्षा पर देशभर में एक बहस शुरू हुई। इंडिया गेट पर न्याय की मांग पर होने वाले प्रदर्शनों में हर विचारधारा के लोग जुटते थे, औरतों की सुरक्षा और आजादी के लिए उनका अपना अलग–अलग नजरिया था लेकिन एक समझ जरूर स्थापित हुई कि औरत का पहरावा, रात में अकेले बाहर निकलना या किसी से दोस्ती उसका अधिकार है और औरतों पर होने वाले उत्पीड़न के लिए औरत को ही दोषी ठहराना गलत है।

यह कहना गलत नहीं होगा कि दिल्ली की घटना पर चले आंदोलन ने पूरे देश में महिलाओं को हिंसा के खिलाफ सामने आने की ताकत दी और समाज का सकारात्मक नजरिया बना। इसका नतीजा था कि कई ताकतवर लोगों को सत्ता के संरक्षण के बावजूद जन दबाव में जेल जाना पड़ा। आसाराम बापू, राम रहीम जैसे कई तथाकथित संत भी नहीं बच पाए।

आसाराम पर 2008 में बच्चों की हत्या का आरोप लगा। उसके बाद उनपर और कई आपराधिक मुकदमे चले। गुजरात का मुख्यमंत्री रहते हुए नरेंद्र मोदी ने आसाराम पर चली जांच की रिपोर्ट सार्वजनिक नहीं की और उन्हें जेल जाने से बचाया। लेकिन 2013 में आसाराम गिरफ्तार हुए और उन्हें आजीवन कारावास की सजा मिली। उसी तरह राम रहीम के खिलाफ 2002 में ही बलात्कार का आरोप एक युवती ने लगाया था। 2007 में सीबीआई जांच पूरी होने के बाद भी यौन शोषण और हत्या मामले में आरोपी राम रहीम को जमानत मिल गई थी, लेकिन 2012 के बाद बदलते माहौल ने दबाव बढ़ा दिया, वह दोषी सिद्ध हुए और 2017 में जेल गए।

इसी दौर में कार्यस्थलों पर यौन हिंसा से सुरक्षा का सवाल उठा और मी टू आंदोलन में महिलाओं ने यौन उत्पीड़न के व्यक्तिगत सवाल उठाने का साहस दिखाया।

2014 के चुनाव में नरेन्द्र मोदी ने महिलाओं की सुरक्षा के सवाल को खूब उठाया जिससे महिलाओं ने भाजपा को वोट दिया और केन्द्र में भाजपा गठबंधन की सरकार बनी। लेकिन सत्ता में आने के बाद महिला हिंसा पर इस सरकार का अलग ही चरित्र दिखा। 2017 में भाजपा ने उत्तर प्रदेश में सरकार बनाई उसके बाद यहां कई घटनाएं सामने आईं जहां यौन उत्पीड़क बलात्कारी नेताओं, दबंग विधायकों, सांसदों का बचाव किया गया। हाथरस में दलित लड़की के बलात्कार मामले में पुलिस ने मां–बाप को घर में बंद कर लड़की की लाश जबरन जला दी और बलात्कार कांड की रिपोर्टिंग करने पहुंचे केरल के एक पत्रकार सिद्दीकी को जेल में डाल दिया गया।

यों देखा जाए तो भाजपा के सत्ता में आने से पहले की सरकारें भी सत्ताधारी वर्ग से जुड़े यौन उत्पीड़कों का बचाव करती थीं लेकिन मनुस्मृति को अपना आदर्श मानने वाली भाजपा सरकार के दौर में हमने एक नई प्रवृत्ति देखी– अब संरक्षण के साथ–साथ बलात्कारियों का महिमा मंडन भी शुरू हो गया– कठुआ में मासूम बच्ची के बलात्कारी– हत्यारे पुरोहितों के पक्ष में तिरंगा जुलूस निकाला गया। गुजरात की बिलकिस के बलात्कारियों को संस्कारी ब्राह्मण कह कर जेल से छोड़ दिया गया। बी एच यू की छात्रा का यौन उत्पीड़न करने वाले आईटी सेल के नेताओं को जमानत मिलने पर माला पहनाकर सम्मानित किया गया और हाल में हरियाणा के भाजपा अध्यक्ष पर बलात्कार का आरोप लगने पर तर्क दिया गया कि वह ब्राह्मण है और बीड़ी तक नहीं पीता इसलिए वह बलात्कारी नहीं हो सकता। महिला पहलवानों के साथ यौन हिंसा में केंद्र सरकार ने बृजभूषण शरण को बचाने के लिए सारी हदें तोड़ दी। मणीपुर की घटना पर विपक्ष के दबाव में संसद के विशेष सत्र बुलाए जाने के बावजूद प्रधानमंत्री मोदी आज तक मणीपुर नहीं गए और अब बंगाल के कोलकाता में आर. जी. कर अस्पताल में महिला डॉक्टर के साथ रात की ड्यूटी के समय बलात्कार और हत्या की घटना हमारे सामने है। इस घटना ने प. बंगाल को झकझोर दिया और यहां महिलाएं कार्यस्थल पर सुरक्षा की मांग और 'रात हमारी है' नारे के साथ सड़कों पर उतर आईं।

फरवरी 2012 में तत्कालीन यूपीए सरकार ने पर्सनल लॉ में सुधार के लिए पैम राजपूत कमीशन का गठन किया था। इस कमीशन ने महिलाओं की जीवन स्थितियों और उनपर हिंसा के आयामों को चिन्हित किया और सरकार को 2014 में अपनी सिफारिशें दी लेकिन मोदी सरकार ने उसे रद्दी की टोकरी में डाल दिया। इस सरकार ने निर्भया कांड के बाद बने वर्मा कमीशन के कई सुझावों को भी नजरअंदाज किया।

यह सरकार अपने एजेंडे पर आगे बढ़ रही है। अल्पसंख्यकों और महिलाओं के संविधान प्रदत्त अधिकारों को धीरे–धीरे खत्म किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश में धर्मांतरण रोकने के लिए बने कानूनों के बाद अब उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता लागू कर दिया गया है। इन कानूनों के जरिए महिलाओं के अन्तर जातीय विवाह, प्रेम विवाह, लिव–इन रिलेशनशिप को नियंत्रित करने की कोशिश है।

सत्ता के रुख का समाज पर असर पड़ता है इसलिए हम देख रहे हैं कि समाज में भी प्रतिगामी नजरिया बढ़ रहा है। अंतरजातीय विवाह करने पर लड़की की हत्या, शादीशुदा स्त्री का किसी से प्रेम संबंध बन जाने पर हिंसक प्रतिक्रिया, दलित औरतों पर सामंती हिंसा, वीडियो बनाकर ब्लैक मेल की घटनाएं आदि बढ़ रहीं हैं। घरेलू हिंसा की घटनाओं में कमी नहीं है। दर्ज मामलों के अनुसार 30 प्रतिशत महिलाएं गंभीर घरेलू हिंसा की शिकार बन रही हैं। ●

डायन दहन : विद्रोहिणी औरत पर पूंजी, राजसत्ता और धर्म का हमला

◆ बी. के. सिंह

15 वीं से 17वीं सदी के बीच 'यूरोपी नवजागरण' की वेदी पर पूंजी, चर्च और निरंकुश राजसत्ता के पैशाचिक गठबंधन ने करीब बीस लाख औरतों को 'डायन' बता कर अकल्पनीय यौनविकृत हिंसक नृशंसता के साथ यातनाएं देते हुए, उनकी बलि चढ़ाई थी। 'डायन दहन' के यातना घरों की इन्हीं प्रयोगशालाओं में यूरोप में औद्योगिक पूंजीवाद और मानवाधिकार, स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा, जनतंत्र आदि की 'महान' सैद्धांतिक व्याख्याओं का जन्म हुआ था। यूरोप का 'आधिकारिक' इतिहास अपने इस काले अध्याय पर शातिर ढंग से मौन है। कौन थीं वे डायनें जिनके भौतिक अस्तित्व और सृजन और सहकार की समूची विश्वदृष्टि के समूल विनाश पर पूंजीवाद आमादा था?

डायन उस पूरी औरत जमात का प्रतिनिधित्व करती है जो पूंजी और पितृसत्ता की दुनिया में खुद के 'मनुष्य होने' के अधिकार की दावेदारी करती है। उसका 'अपनों' का संसार समूची दमित–शोषित मनुष्यता तक विस्तीर्ण है। औरत डायन इसलिए है कि वह पूंजी, सत्ता और धर्म के लुटेरे आक्रामक गठबंधन के खिलाफ आम श्रमशील जन के अस्तित्व की चुनौती पेश करती है। औरत डायन इसलिए है कि वह सदियों से लूटी जा रही अपनी देह अपने लिए वापस हसिल करना चाहती है। औरत डायन इसलिए है कि वह 'आदमी की दुनिया' में अपने दाखिले और बराबरी की हैसियत की धमक दे रही है। औरत डायन इसलिए है कि वह अपनी जमीन और अपना आसमान मांग रही है।

वणिक पूंजीवाद की नकद अर्थव्यवस्था ने गरीब किसानों और भूदासों को, जो पहले से ही भुखमरी के कगार पर थे, 14 वीं सदी के अंत तक पूरी तरह से बर्बाद कर दिया था। बढ़ते बाजारीकरण, व्यवसायीकरण, और मौद्रिकीकरण का सबसे मारक प्रभाव औरत पर पड़ रहा था। 13 वीं से 15 वीं सदी के बीच यूरोप के ग्रामीण इलाकों से लाखों की संख्या में औरतें शहरों की ओर पलायन के लिए मजबूर हुईं। इनके जीवन यापन की राह बेहद मुश्किल थी : घरेलू चाकरी, फेरी लगाना, खुदरा बाजारी, छोटी-मोटी शिल्प-दस्तकारी, या फिर वेश्यावृत्ति।

ऐसी पैशाचिक प्रसव पीड़ा से जन्म ले रहे पूंजीवाद के लिए औरत 'मनुष्य' नहीं, बस एक विखंडित 'चीज' थी। उसका मस्तिष्क और हृदय उसकी पीठ और हाथों से अलग कर दिए गए, और उसकी कोख और योनि से भी। उसकी पीठ और मांसपेशियाँ खेतों के श्रम में लगा दी गईं। उसके हाथ श्वेत आदमी की सेवा और पालन–पोषण के लिए झटक लिए गए। उसकी योनि आदमी के यौनिक आनंद की सेवा में लगा दी गई। उसकी योनि उसके कोख का प्रवेश द्वार थी, और कोख आदमी के पूंजी निवेश का भंडार। यह पूंजी निवेश मैथुन कर्म था, और इससे होने वाला बच्चा संचित अतिरेक अथवा मुनाफा। (बारबरा ऑमलेड "हार्ट ऑफ डार्कनेस" में : 1986)

सामंतवाद के अंतिम दौर के संकट से निपटने के लिए नई जन्मती बुरजुआ पूंजी, राज्य और चर्च के शासकवर्गीय गठबंधन ने अगली तीन सदियों तक वैश्विक पैमाने पर पूंजी के आदिम संचय के लिए लूट और विदोहन की नृशंस आक्रामकता का ऐसा तांडव मचाया, जिसने धरती का इतिहास बदल कर रख दिया। अमेरिकी भू–गोलार्ध में सोने और चांदी की खोज, वहाँ की अश्वेत आबादी के कत्लेआम, उन्हें गुलाम बना कर खदानों में खटाना, ईस्ट इंडीज विजय और लूट अभियान, अफ्रीका महाद्वीप को काली चमड़ी के वाणिज्यिक शिकार का अभयारण्य बनाना...आदिम संचय के वे मूल श्रोत थे, जिनमें करोड़ों औरतों और आदमियों की बलि चढ़ी। इस अभियान में औरत की देह : उसकी 'योनि और कोख का शिकार' पुनरुत्पादक श्रम के अतिरेक मुनाफे के रूप में पूंजी के 'आदिम संचय' का एक विशिष्ट क्षेत्र था। यूरोप और अमेरिका दोनों ही भू-गोलार्धों में औरत की देह के इस दलन-विजय अभियान को 'डायन दहन' के जरिए अंजाम दिया गया।

यूरोप में पूंजी के आदिम संचय अभियान की शुरुआत ग्रामीण अंचल की "बाड़बंदी" (Enclosure) से हुई। व्यापक श्रमशील खेतिहर समुदायों की खेती की जमीनों, विशेषकर सामुदायिक खेतिहर संपदाःसामुदायिक चारागाहों, जल श्रोतों, वन भूमियों आदि की 'वाणिज्यिक कृषि' के लिए जबरन 'घेरेबंदी' कर दी गई। लाखों की संख्या में गरीब खेतिहर अपनी सदियों की जमीन और सांस्कृतिक जड़ों से उखाड़ कर शहरों की ओर खदेड़ दिए गए। इंग्लैंड में'बाड़बंदी' विरोधी विद्रोह 15 वीं सदी के अंतिम चरण से शुरू हो कर 16 वीं और 17 वीं सदी तक जारी रहा। बाड़बंदी की बाड़ों को जमींदोज कर देना–उखाड़ फेंकना सामाजिक जन प्रतिरोध का प्रतिनिधि प्रतीक बन गया। इनमें औरतें हमेशा ही बहुतायत से, और बढ़–चढ़ कर भागीदारी कर रहीं थीं। बहुतेरे विद्रोही प्रतिरोध पूरी तरह से औरतों द्वारा ही संचालित किए गए। जमीन के छीने जाने और ग्रामीण सामुदायिक खेतिहर व्यवस्था के छिन्न–भिन्न होने का सबसे मारक असर औरतों पर ही पड़ा था। अधिकांश आदमी शहरों की ओर पलायित हो चुके थे। औरत को अपने बूते न केवल अपने, बल्कि बच्चों और परिवार के बूढ़ों–अपंगों की देख-भाल करनी थी। इसके लिए उसके पास अपने 'निपट शरीर' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। यह वह यूरोप था जो समूची दुनिया का इतिहास बदल रहा था, समूची मनुष्यता को नई तकनीकी और सांस्कृतिक–मानवीय मूल्यों के उत्कर्ष पर पहुंचाने का दावा कर रहा था। उसी यूरोप में आम आदमी–औरत को कभी भर पेट अनाज नसीब नहीं हुआ।

स्वाभाविक रूप से 16 वीं–17 वीं सदी के सर्वहारा विद्रोहों का श्रोत अधिकांशतः भुखमरी थी। ये विद्रोह जब–तब 'खाद्यान्न दंगों' की शक्ल में

फट पड़ते थे। आम तौर पर औरतें इनमे नेतृत्वकारी भूमिका में थीं। ऐसे ज्यादातर विद्रोह 'औरत दंगे' (Women Riots) कहे जाते थे। ये औरतें ही थीं, जो इस पूरी शोषण प्रक्रिया में सबसे अधिक बरबाद और सताई हुई थीं। अपने बच्चों को भूख और मौत से बचाने के लिए वे अपना सब कुछ दाँव पर लगा कर सड़कों पर उतर आती थीं। पूंजी, राजसत्ता और चर्च के गँठजोड़ ने पूंजीवाद के प्रसव काल के इस संकट की प्रतिक्रिया डायन दहन के रूप में दी।

यह यूरोप में मानवीय तर्क संगति के 'नव जागरण' का स्वर्णकाल था। 16 वीं सदी का पश्चिमी यूरोप प्रोटेस्टेंट सुधारों और वणिक बुरजुआ के उदय का स्वर्णयुग था। यही युग यूरोप में 'डायन दहन' का भी स्वर्णकाल था, जिसने औरत के उस समूचे सामूहिक–सामुदायिक सृजनशील संसार, सामुदायिक–सामाजिक संबंध और ज्ञान प्रवाह को पूरी तरह से नष्ट कर दिया जो पूर्व–पूंजीवादी समाज में औरत के अस्तित्व, अस्मिता, और आत्म सम्मान का आधार हुआ करती थी। यूरोपी सभ्यता और तार्किक संगति के इस स्वर्णयुग में औरत मूढ़ और कटखनी डायन बता कर दुतकारी–खदेड़ी जा रही थी, सड़कों पर नंगी घुमाई जा रही थी, सरे-आम कोड़ों से उसकी चमड़ी उधेड़ी जा रही थी, पिंजरे में बंद कर के डुबोई जा रही थी, बदचलन बता कर जिंदा भूनी जा रही थी।

यूरोपी सभ्यता के इस स्वर्ण काल की राह का सबसे बड़ा अवरोध और यूरोप के 'नए श्वेत मर्द' की सबसे खतरनाक दुश्मन औरत थी। 1699 में वाल्टर कार्लटन ने "इफेसियन मैट्रन" में लिखा – 'तू ही है वह शातिर लोमड़ी, जो हमें अपनी चमड़ी की चमक से लुभाती है और जब मूढ़ता हमें तेरी पहुँच तक ले आती है, तू हम पर टूट पड़ती है। तू ही है विवेक की दुश्मन, उद्यमिता की बाधा, अच्छाई की राह का कांटा, और वह अंकुश – जो हमें तमाम बुराइयों, नारकीय अपवित्रताओं और बर्बादी की तरफ धकेलती है। तू ही है मूर्खों का स्वर्ग, भले मनुष्य का प्लेग, और प्रकृति की महानतम भूल'।

उस युग की शासकीय वैचारिकी की यह प्रतिनिधि बानगी हमें संकेत देती है कि क्यों डायन दहन की दो सदियों में लाखों औरतें जघन्यतम यौनिक यातनाओं–प्रताड़नाओं का शिकार हुईं, जिंदा जलायी गईं, डुबो कर मारी गई, और सूली पर चढ़ाई गईं। यह सारा कुछ तब तक घटित नहीं हो सकता था, जब तक कि औरत समूची सत्ता संरचना के लिए भारी खतरा और दुर्दमनीय चुनौती नहीं बन गई हो।

डायन दहन का एक प्रभावी उत्प्रेरक औरत का 'गरीब की धाय और हकीम' होना भी था। राजसत्ता और चर्च के पास गरीब के इलाज की कोई व्यवस्था नहीं थी। चर्च के लिये गरीब के दुख और बीमारी उसके कुकर्मों का फल थी, जिसे उसे बिना किसी प्रतिवाद के झेलते रहना था। ऐसे में ग्रामीण समाज–समुदाय की उम्र दराज औरतें उनके घावों पर मरहम लगाने वाली, उनके रोगों, शारीरिक विकारों की औषधियों और चीर–फाड़ से चिकित्सा करने वाली, जचगी और जरूरत पर गर्भपात कराने वाली, मानसिक व्याधियों, चिन्ता और दुखों की मनोचिकित्सक, डाक्टर, नर्स, धाय, औषधिविज्ञानी सब कुछ थीं। वे अपने ज्ञान भंडार के रहस्यों को सहेज कर रखतीं, अपनी अनुभवजन्य उपलब्धियों से परिष्कृत और समृद्ध करतीं और अगली पीढ़ी को सौंप जातीं।

ऐसी डायनों के अंत पर पूंजीवाद का बहुत कुछ दांव पर लगा था। इनके जीवित रहते चिकित्सा जगत के संस्थागत संगठन, सिद्धांत और व्यवहार को अकूत मुनाफे का श्रोत बना सकना असंभव था। पूंजीवाद के लिए चिकित्सा पर एकाधिकार का मतलब यह तय करने का एकाधिकार था कि समाज में किसको जीवित रहने का अवसर मिलेगा, और कौन मारा जाएगा; किसके पास प्रजनन क्षमता रहेगी और और कौन बांझ रहेगा, आबादी बढ़ेगी या घटेगी, औरत को जन्म लेने की अनुमति मिलेगी या नहीं; समाज में कौन सहज, सामान्य और प्रतिभाशाली माना जाएगा और किसे पागल करार दे कर समाज और जीवन के अधिकार से वंचित किया जाएगा ?

इसलिए यूरोपी सभ्यता के उत्कर्ष की इन दो सदियों में गरीब के चिकित्सा संसार की रखवार लाखों औरतों की बर्बर यातनाओं के साथ बलि चढ़ाई गई। उन्हें, जिन्होंने असंख्य जीवनों को धरती पर लाने और बचाए रखने का 'पाप' किया था, उन पर बच्चों को भून कर खाने का आरोप लगा कर उनके अपने बच्चों के सामने जिंदा भून कर मारा गया, और फिर उसी आग में उनके बच्चों को भी झोंक दिया गया।

1484 में पोप इन्नोसेन्ट III ने डायन तंत्र कर्म को जड़ से मिटा देने का निर्देश दिया। उनके दो प्रमुख शिष्यों जेकब स्परेंगर और हेनरी फ्रेयर ने डायन दहन की पवित्र निर्देशिका 'मलियस मालफिकारम' (डायन का हथौड़ा) जारी की। निर्देशिका में डायनों पर लगाए जाने वाले आरोपों, और गवाहियां हासिल करने के लिए यौनिक यातनाओं और शारीरिक प्रताड़नाओं के अकल्पनीय तौर–तरीकों के निर्देश दिए गए थे : डायन को पूरी तरह से निर्वस्त्र कर के शरीर के सारे बाल उखाड़े जाने थे क्योंकि इन बालों में शैतान छिपा था। शैतान को भगाने के लिए औरत के शरीर, विशेषकर स्तनों और गुप्तांगों को बरछों और भालों से

गोदा जाना था। बूटों से कुचल कर हड्डियाँ–पसलियाँ चूर कर देना, भूखे मारना, शैतान के साथ संभोग के कबूलनामे के नाम पर पैशाचिक बलात्कार करना, स्टूल पर बांध कर बिठा कर नीचे आग जलाये रखना, पिंजरे में बंद कर के मरणासन्न हो जाने तक पानी में डुबाते–निकालते रहना...सामान्य विवेचना का हिस्सा थी।

डायन कर्म अपराधों की सूची अनंत थी। इन आरोपों के अनुसार डायनों का संगठित समाज था। वे रात को झाडू पर सवार हो कर उड़ती हुई शैतान भोज के लिए जुटती थीं। वे बच्चों के मांस की दावत उड़ातीं और शैतान के साथ संभोग करती थीं! वास्तव में ये संदर्भ दूर पहाड़ियों पर जलाए गए अलावों के चौगिर्द गरीब, उजाड़े गए खेतिहरों के गुप्त विद्रोही जुटावों और बैठकों के थे, जिनमें औरतों की बढ़–चढ़ कर हिस्सेदारी और अक्सर नेतृत्वकारी भूमिका हुआ करती थी। स्वाभाविक रूप से शासकीय गठबंधन के लिए प्रतिरोध की हर हलचल डायनों और शैतान का पाप कर्म थी।

अपनी अंतर्वस्तु में डायन दहन का समूचा पैशाचिक अभियान 'देह की शक्ति' को पूंजी की 'उत्पादक श्रम शक्ति' में बदलने का अभियान था। डायन दहन के यातना घर वे प्रयोगशालाएं थीं जिनमे पूंजीवादी 'यांत्रिक' दर्शन के अनुरूप 'देह' को श्रम मशीन बनाने के लिए नियंत्रित–निर्देशित करने के सिद्धांत और व्यवहार की निर्मिति की गई। डायन दहन की बलिवेदियों पर 'सामाजिक अनुशासन का व्यवहार शास्त्र' रचा गया, और यातना के 'वैज्ञानिक इस्तेमाल' का जन्म हुआ। डायन दहन अभियान औरत की देह, योनि, और गर्भ को जनसंख्या वृद्धि और श्रमशक्ति पुनरुत्पादन–संचय के लिए पूंजी और राजसत्ता के मातहत लाने का भी प्रयास था।

डायन दहन की पैशाचिक सामाजिक अभियांत्रिकी के जरिए देह की यांत्रिकता का सिद्धांत विकसित हुआ। मानव देह को चेतना और आत्मा से पृथक संवेदना शून्य हाड़–मांस के अवयवों का एक समुच्चय, एक मशीन बना दिया गया। मानव देह कुछ नहीं जानती, कुछ नहीं मांगती, कुछ भी महसूस नहीं करती। निकोलस मालब्रान्क पूछता है : क्या शरीर सोच सकता है? और तुरंत ही जवाब देता है : नहीं, हरगिज नहीं। हॉब्स के लिए भी शरीर यांत्रिक गतिविधियों (mechanical motions) का समुच्चय है, उसकी कोई स्वायत्त गति नहीं है, वह बाहरी शक्तियों और कारकों के माध्यम से ही गतिमान होता है।

यूरोप में डायन दहन का दौर औरत के 'ऐतिहासिक प्रभाव' का दौर था। इसने एक नई औरत को जन्म दिया : पतिव्रता, शांत, आज्ञाकारी, मितभाषिणी, आदमी के घर की सहेज–संभाल में व्यस्त और अविचल चरित्रवान। यह बदलाव 17वीं सदी के अंत से शुरू हुआ। दो सदियों तक चले औरत को पालतू बनाने, उसके प्रतिरोध पर काबू पाने के राजकीय–धार्मिक आतंकवाद का यह असल हासिल था। डायन दहन के जमाने में औरत वहशी, मूढ़, कामातुर, सतत विद्रोहिणी, वाचाल, नाफरमान, आत्म-नियंत्रण में अक्षम, शैतान की सेविका और रखैल थी। वह विद्रोहिणी थी, तुर्की-ब-तुर्की सवाल-जवाब करती थी, कठोरतम यातनाओं में भी उफ तक नहीं करती थी। ऐसी औरत ढहती सामंती सत्ता और उभरती पूंजी सत्ता – दोनों से ही लोहा लेने के चलते खेतिहर समुदाय के प्रतिरोधी–बागी चरित्र का प्रतिनिधि प्रतीक थी जो राज्य, पूंजी और चर्च की 'पुरुष' सत्ता प्राधिकार के लिए चुनौती बन कर उभर रही थी। इसलिए डायन दहन के जरिए ऐसी औरत का समूल अंत किया जाना अनिवार्य हो गया था।

जब यह काम पूरा हो गया-सामाजिक अनुशासन लागू कर दिया गया-सत्ताधारी वर्ग और पूंजी अपने चुनौती विहीन वर्चस्व के प्रति निश्चिंत हो गई, डायन दहन अभियान भी क्रमशः धीमा पड़ता हुआ बंद हो गया। यह प्रक्रिया 17वीं सदी के अंत से शुरू हो चुकी थी। 18 वीं सदी तक औरत किसी और दुनिया की औरत में बदली जा चुकी थी : शांत, कामना विहीन, आज्ञाकारिणी, नैतिक और पवित्र, आदमी पर सकारात्मक नैतिक प्रभाव डालने में सक्षम देवी ! डायन दहन औरत की कमनीयता को पुनरुत्पादक श्रम में बदलने का अभियान था।

डायन दहन के इस दौर पर विराम लगने के साथ पूंजीवादी साम्राज्यवाद के शस्त्रागार से डायन दहन का विलोप नहीं हुआ। 1871 में पेरिस का बुरजुआ बौद्धिक तबका पेरिस कम्यून की औरतों के लिए डायन को वापस खोज लाया। कम्यून की औरतों पर समूचे पेरिस को आग के हवाले करने के आरोपों की झड़ी लग गई। दावा किया जाने लगा कि कम्यून की हजारों "पेट्रोल्यूसेस" औरतें पेरिस की सड़कों और गलियों में हाथ में पेट्रोल के कनस्तर लिए आगजनी करती घूम रही हैं। "पेट्रोल्यूस" औरत की गढ़ी जा रही छवि 'डायन' का हूबहू प्रतिरूप थी : उम्रदराज औरत, जिसकी आँखों से वहशत और शैतानीयत टपकती थी, जटीले–खुले हुए बाल, और अपने पापों/अपराधों को अंजाम देने के लिए हाथों में पेट्रोल का कनस्तर !

नई दुनिया से गुलाम व्यापार के खात्मे के बाद पूंजीवादी साम्राज्यवाद द्वारा डायन दहन को उपनिवेशों की आंतरिक सामाजिक संरचना में इस तरह से प्रतिरोपित करने का अभियान शुरू हुआ कि पराभूत समुदाय खुद ही इसका इस्तेमाल अपने समाज–समुदाय की औरतों के दमन–दलन के लिए करने लगे। यह पूंजीवादी साम्राज्यवाद की "अपनों द्वारा अपनों की हत्या" के जरिए औरत को कमतर, हेय और अक्षम साबित कर के घर और पुनरुत्पादन की बेड़ियों में कैद करने की मुहिम थी।

अफ्रीकी महाद्वीप में डायन दहन की पैशाचिक प्रवृत्ति को इतने गहन रूप से आत्मसात करा दिया गया कि आज भी डायनों के नाम पर अफ्रीकी जनता अपनी ही औरतों का पैशाचिक शिकार कर रही है। यहां भी डायन दहन का रिश्ता अफ्रीकी प्राकृतिक खजानों के लिए 'विकसित पूंजीवादी विश्व' की कभी नहीं मिटने वाली भूख की राह के सबसे कठिन अवरोध 'औरत' से उसके अपनों के जरिए छुटकारा पा लेने से है।

1980 और 1990 दशक से दुनिया के पैमाने पर शैतानी जादू–टोना के नाम पर

औरतों, गरीब आदिवासियों, और खेतिहरों के दमन–दलन और हत्याओं का उन्मादी उभार देखा जा रहा है। कारपोरेट पूंजी की आक्रामकता के आज के नव उदारी दौर में जमीन और तमाम प्राकृतिक–पारंपरिक–सामुदायिक साधनों–संसाधनों का कारपोरेट घरानों के पक्ष में जबरन आहरण के 'राजकीय अभियान' की यह सुचिन्तित–सुनियोजित रणनीति है। नतीजा : भयावह पैमाने पर आदिवासियों, खेतिहरों, औरतों का विस्थापन, श्रमशील जनता के जीवन निर्वाह के हर संभव साधनों–संसाधनों और अवसरों की निर्मम लूट, व्यापकतम और गहनतम विस्तार लेता दरिद्रीकरण, और परस्पर सौहार्द पर आधारित सामाजिक-सामुदायिक जन-जीवन में जाति, संप्रदाय, धर्म आदि के वैषम्य, वैमनस्य की विष बेल का आरोपण।

खुद अपने देश में हिन्दुत्व, राष्ट्रवाद और विकास की लफ्फाजियों के भ्रमजाल को हटा कर देखिए–चारों ओर, हर कहीं–हर पल डायन दहन बदस्तूर होता हुआ नजर आएगा : मणिपुर में राजकीय संरक्षण में औरत को निर्वस्त्र कर के सार्वजनिक रूप से घुमाए जाते हुए, आदिवासी अंचलों में राज्य के सशस्त्र बलों द्वारा नाबालिग बच्चियों और औरतों के जघन्यतम सामूहिक बलात्कार के बाद हत्या किए जाते हुए, सार्वजनिक रूप से सड़कों पर औरतों का बलात्कार किए जाते हुए, संप्रदाय विशेष के लोगों और दलितों की सार्वजनिक रूप से पीट–पीट कर हत्या किए जाते हुए, ...हर जगह औरत, गरीब, असहाय और अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों का डायन दहन राज्य और राजसत्ता के संरक्षण–प्रोत्साहन में निर्बाध जारी है। यह इस बात का प्रमाण है कि आज भी पूंजीवादी शासकीय पितृसत्ता औरत की ताकत से उतना ही खौफ खाती है जब जन्म लेते पूंजीवाद को यूरोप के ग्रामीण अंचलों में दो सदियों तक औरत की ताकत ने रीढ़ कँपाती चुनौती दी थी। आज भी उतनी ही शिद्दत से जारी है इस समूचे डायन दहन अभियान को हठीली चुनौती देता औरत का दुरघर्ष संघर्ष और प्रतिरोध।

●

नर से निकली नारी-ट्रांसजेंडर महिला, संजना साइमन

◆ **प्रीति प्रभा**

जन्म के समय औलाद पैदा होती है। स्वतंत्र अभिव्यक्ति के साथ उन्हें बढ़ने दो, परेशान मत हो, निश्चिंत रहो!

संजना साइमन की ये पंक्तियां स्वतंत्र अभिव्यक्ति की मांग करती है। ये मांग ऐसे माता पिता से है जो औलाद के रूप में सिर्फ बेटा और बेटी को ही स्वीकार करते हैं।

उत्तर प्रदेश के बरेली जिले में एक उच्च मध्यम वर्ग परिवार में ट्रांसजेंडर महिला संजना साइमन का जन्म एक पुरुष शरीर में हुआ था जिसकी वजह से माता पिता ने नीरज साइमन जेम्स नाम दिया। पिता इंडियन रेलवे में काम करते थे। मां कॉन्वेंट स्कूल में हिंदी की शिक्षिका थीं। दो बड़े भाई हैं, दोनों ही विवाहित हैं। दोनों भाभियां भी सरकारी नौकरी में हैं। नीरज ने एम. कॉम. पूरा करने के बाद इलाहाबाद से बी.एड. किया। फिर अंग्रेजी शिक्षक के रूप में बरेली के सैक्रेड हार्ट्स सीनियर सेकेंडरी स्कूल में पढ़ाने का काम शुरू किया, उसी दौरान उसने अंग्रेजी में पोस्टग्रेजुएट की डिग्री हासिल की और बिशप कॉनराड सीनियर सेकेंडरी स्कूल कैंट, बरेली में सीनियर क्लासेज में अंग्रेजी पढ़ाने का उसे काम मिला, किताबों से तो बहुत लगाव था ही, उस पर बच्चों से इतना प्रेम और इज्जत मिली कि अध्यापन को ही नीरज ने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। सब कुछ ठीक चल रहा था तो ऐसी कौन सी परिस्थिति थी जिससे नीरज को संजना बनना पड़ा? संजना की कविता की अगली पंक्ति में समाज के बनाए गए "रूढ़िवादी बक्से" पर सवाल है...

वो लड़का या लड़की ही बनेंगे
कोई ट्रांसजेंडर नहीं बनेगा ।
आप खुद ही... खुद के बनाए गए
रूढ़िवादी बक्से में औलाद को पालते हो
उन्हें खुद की समझ और सोच से
लड़का या लड़की बना देते हो

अब मेडिकल टर्म में देखा जाए तो संजना जेंडर डिस्फोरिया के साथ पैदा हुए थी। लाखों में कोई एक बच्चा कुदरती रूप से, ऐसा पैदा होता है जिसे अपने ही जिस्म और जननांगों से नफरत या कहें उनके साथ जीना अच्छा नहीं लगता है। असल में वो नीरज (पुरुष) तो कभी थी ही नहीं! थी तो बस संजना ही ...लेकिन इस बात को अच्छी तरह समझती थी कि बिना पढ़ाई किए इज्जत की जिन्दगी ख्वाब बन जायेगी, क्योंकि अपने आस–पास अपने जैसे लोगों की दुर्दशा देख रही थी। इसलिए लड़की बनने के सपनों पर विराम लगाकर सबसे पहले उसने अपनी शिक्षा पूरी की। काबिलियत और जुनून ने अध्यापक बना दिया साथ ही नीरज, संजना होने के अहसास को छुप–छुपकर जीता रहा। कभी अपने जैसे दोस्तों के साथ तो कभी किसी कम्युनिटी पार्टी में। घर वाले भी खुश थे क्योंकि वो संजना और नीरज के बीच बैलेंस बना कर चल रहा था।

स्कूल के बच्चों के संग जीवन अच्छा कट रहा था। तभी 2014 में पिता जी गंभीर रूप से बीमार हो गए थे, हार्ट की सर्जरी हुई। पिता की चाहत थी बेटे की शादी, सभी नीरज की शादी के पीछे पड़ गए। अब नीरज को लगा कि खुद की जिन्दगी मझधार में है और पिताजी किसी लड़की की जिन्दगी भी खराब करवा देंगे। फिर, एक दिन उसने हिम्मत करके पिता, भाई, मां को रोते–रोते सब सच बता दिया, जो वो भी जानते थे लेकिन शायद याद नहीं रखना चाहते थे। 2015 में पिताजी का स्वर्गवास हो गया लेकिन जाने से पहले वो संजना को स्वीकार कर गए। यहाँ से शुरू

होती है संजना की कहानी जो सेक्स चेंज सर्जरी से अब ट्रांसजेंडर महिला है। यही वजह है कि संजना आगे लिखती हैं...

जब वो औलाद
खुद को आपके उस
कब्र नुमा बक्से में कैद पाती है
छटपटा के जब उसे तोड़ती है
तो आप उसे ट्रांसजेंडर बना देते हो।

संजना की जिन्दगी में अपमान, संघर्ष और चुनौतियों का दौर शुरू हो गया, जब घर छोड़ा और दिल्ली पहुंची तो फिर जो मुसीबतों का पहाड़ टूटा, उसने रुला दिया... जब पहली बार नेग–बधाई में अपना हिस्सा मिला तो बहुत तकलीफ हुई। अपने स्वर्गीय पिता से बहुत माफी माँगी और दिल हुआ कि इतनी पढ़ी–लिखी और अनुभवी होते हुए भी नौकरी नहीं मिली। किराये का घर नहीं मिल रहा था। जहाँ काम मांगने जाती वहाँ लोग जिस्म और खूबसूरती के चर्चे करते और कहते–घूमने चलो, महीने भर की सैलरी ले लेना। उसे लगा कि शरीर को बेचने से अच्छा है कि गुरु के साथ डेरे पर रहा जाए।

डेरे के अपने कुछ नियम–कानून होते हैं, सबको उन्हें मानना ही होता है। सभी वहाँ गुरु–चेला परंपरा में रहते हैं और एक गुरु के सारे चेले आपस में गुरुभाई होते हैं। गुरु भाइयों में बड़ी जलन और एक–दूसरे से बेहतर बनने की होड़ लगी रहती है। सभी गुरु को प्रभावित करने में लगे रहते हैं जिससे कि गुरु उसे अपना वारिस बनाए। डेरो में प्यार–मोहब्बत, सजना–संवरना, सब कुछ गुरु के नाम से ही होता है। किसी का अगर पुरुष मित्र बन जाये तो बड़ी बातें सुननी पड़ती हैं और भविष्य को लेकर हमेशा संकट रहता है। वहाँ तसल्ली नहीं मिलती, न ही घर जाने की आजादी होती है, अपनी मर्जी से घूमने–फिरने, रिलेशनशिप में रहने की भी कोई छूट नहीं मिलती।

यही वजह है कि संजना को पैसा, कपड़ा तो था लेकिन तरस खाकर दिया पैसा भीख जैसा चुभता था। मेहनत करके कमाया हुआ खुद की काबिलियत का पैसा सुकून देता है। यह अंतर उसने महसूस कर लिया था। एक तरफ बारह वर्ष शिक्षण कार्य और दूसरी तरफ नेग–बधाई माँगना, जमीन–आसमान का अंतर था।

खुद से नफरत सी होने लगी थी उसे, वो रोती रहती और डिप्रेशन में जीने लगी। फिर मरने की सोची लेकिन एक दोस्त ने उसकी उस नकारात्मक सोच को बदलने का काम किया। कुछ महीने लगे लेकिन उसने खुद को संभाला।

संजना जॉब के लिए आवेदन करती रहती थी, वो ऐसी कंपनी और संस्था खोजती रही जो LGBTQ को सहयोग करता हो। मौका मिला एक एनजीओ में जो ट्रांसजेंडरों के हित के लिए काम करता था। इंटरव्यू के लिए बुलाया गया। संजना सारी डिग्रियां और आत्मविश्वास लिए पहुंच गई और फिर सभी आवेदकों को पीछे करते हुए उस एनजीओ की प्रबंधक बन गई।

पैसा–इज्जत मिलने लगा जिसके लिए वो दिन–रात दुआएं मांगती थी लेकिन इस एनजीओ के पदाधिकारी ट्रांसजेंडर समुदाय के हित की कम और डोनेशन की ज्यादा सोचते थे। फिर मौका मिला भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय में काम करने का। संजना को मंच संचालन के लिए बुलाया था, अच्छी आवाज और भाषा में पकड़ के चलते पहले कार्यक्रम में खूब वाहवाही मिली और कथक केंद्र, संस्कृति मंत्रालय में प्रोग्राम सेक्शन में काम मिल गया।

दिल में ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए कुछ करने की इच्छा ने संजना को एलजीबीटक्यू सोशल एक्टिविस्ट भी बना दिया और उसने अपना खुद का ट्रस्ट रजिस्टर करवाया 'लव बाइ नेबर ट्रस्ट' इसके साथ उसने लोगों की सोच को बदलने की मुहिम चलाई जो अभी भी जारी है।

प्यार से कौन बचा है भला? संजना को भी प्यार हुआ अपने एक अच्छे दोस्त से। अप्रैल 2021 में सर्जरी हुई, सर्जरी में उसने बहुत अच्छी तरह उसका ख्याल रखा। नवम्बर 2021 से दोनों साथ रहने लगे। शुरू में लड़के के परिवार ने बहुत क्लेश किया लेकिन अब उसके परिवार से रोज ही बातचीत और मुलाकात हो जाती है। अब दिल्ली में वो अकेली नही है, उसका परिवार संजना का परिवार बन चुका है।

संजना मानती है कि एक ट्रांसवूमैन की लाइफ का सबसे सुंदर हिस्सा है–न जमाने की परवाह, न दकियानूसी भरी सामाजिक परंपराएँ। बस दो दिल जो जीना चाहते हैं, खुश रहना चाहते हैं । न कोई निकाहनामा, न कोई पंडित न, कोई पादरी, न गवाह, न कोई सबूत। बस है तो केवल प्यार है। वो कहती है ''मैं खुश हूँ जब तक खुशी मिल रही है।

संजना ये भी मानती है कि ट्रांसवूमैन की जिन्दगी में कुछ भी बहुत दिनों तक नहीं चलता। जब जन्म देने वाले माता–पिता समाज की वजह से हमें अकेला छोड़ देते हैं तो फिर अपने साथी से क्या शिकवा, क्या शिकायत? रही बात पुरुषों की तो आजकल तो ये भी देखा जाता है कि महिला कितनी भी सुंदर हो उसका नयापन खत्म होते ही कई पुरुष साथी किसी और महिला के साथ चल देते हैं। ऐसे में हम तो ट्रांस महिला हैं, जितने पल साथ हैं, खुशी से उसे जीना ही समझदारी है! हसरतें तो कहती हैं कि माँ–बाप कोई लड़का ढूँढते, फिर मेरे भी दरवाजे बारात आती, मैं भी दुल्हन बनकर ससुराल जाती ......लेकिन हसरत और हकीकत के बीच उलझी ट्रांसजेंडर महिला और ट्रांसजेंडर पुरुष खुद ही सीख लेते हैं 'जिंदगी को खुलकर जीना, बिना शर्तों के, बिना बंधन के।' संजना यहीं नहीं रुकती आगे कहती है कि हकीकत में लिव इन रिलेशनशिप ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए एक आशीर्वाद ही है!

कोई ट्रांसजेंडर खुद से नहीं बनता बल्कि कोई ट्रांसजेंडर होता ही नहीं है–

सच तो ये है,
इंसान की नासमझी
और परिवार की कट्टरता से बने हैं।
नर से ट्रांसजेंडर नहीं बल्कि
नर से नारी बनी है।

●

भारतीय शाकाहार का मिथक – नीतियों, संस्कृति और पोषण पर प्रभाव

◆ डॉ. सिल्विया कार्पगम

भारत में भोजन और पोषण के संदर्भ में सत्ता में बैठे लोग व्यक्तियों और समुदायों पर अनेक प्रकार की हिंसा करते हैं. इस हिंसा का असर भोजन से जुड़ी नीतियों, सांस्कृतिक पहलुओं और अंततः पोषण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को समझना जरूरी है.

'भारत के शाकाहारी होने का भ्रम'

भारत में शाकाहार को लेकर यह आम धारणा है कि भारत एक शाकाहारी देश है, जबकि सभी साक्ष्य इसके उलट मौजूद हैं. यह मिथक वास्तविक सांस्कृतिक या पारंपरिक आधार पर नहीं, बल्कि मुख्य रूप से वैचारिक और राजनीतिक आधार पर फैलाया गया है.

इसका प्रभाव यह हुआ है कि सस्ते शाकाहार, जैसे अनाज और बाजरा, को बढ़ावा दिया जा रहा है, जबकि हाशिए पर या कमजोर समुदायों के पारंपरिक खाद्य पदार्थों विशेष रूप से मांस और अन्य पशु–आधारित खाद्य पदार्थों को हाशिए पर धकेल दिया जा रहा है.

विडंबना यह है कि दूध और डेयरी उत्पाद, जो असल में पशु–आधारित खाद्य पदार्थ हैं, शाकाहारियों द्वारा बड़ी मात्रा में खाए जाते हैं और इन्हें संरक्षण भी दिया जाता है. भारत के शाकाहारी, जो ज्यादातर प्रभावशाली उच्च जातियों और वर्गों से आते हैं, आमतौर पर बेहतर वेतन और स्वास्थ्य के अन्य सामाजिक मानकों तक पहुंच रखते हैं. उनके भोजन में अनाज, बाजरा, दालें, दही, दूध, मक्खन, घी, मेवे, अंकुरित अनाज, सलाद, सब्जियां, पनीर आदि शामिल होते हैं.

दूसरी ओर, गरीब वर्गों को डेयरी उत्पाद बहुत कम मात्रा में ही उपलब्ध होते हैं. इसके अलावा, इतिहास में 'निचली' या अछूत जातियों के लोगों पर घी जैसे डेयरी उत्पादों का सेवन करने पर हमले किए जाने के भी उदाहरण हैं.

भारत एक शाकाहारी और अलौकिक योग करने वाला, शांतिप्रिय देश है, यह भ्रम मुख्यतः उच्च जातियों, अंग्रेजी बोलने वाले, पश्चिमी देशों में रहने वाले भारतीय मूल के लोगों द्वारा पुष्ट किया जाता है. पश्चिम के बहुत से लोग जाति व्यवस्था से अनजान हैं, जिसे ये उच्च जाति के भारतीय अक्सर नजरअंदाज या नकार देते हैं. यह विरोधाभासी है कि ये ही लोग पश्चिम में जातीयता या रंग के आधार पर भेदभाव का विरोध करते हुए, सकारात्मक कार्रवाई और विविधता की वकालत करते हैं.

'शाकाहारी' पोषण नीतियाँ'

भारत को शाकाहारी राष्ट्र मानने का भ्रम और मांसाहारियों का निर्णय लेने वाली भूमिकाओं में प्रतिनिधित्व न होना ऐसी पोषण नीतियों, कार्यक्रमों और शोध को बढ़ावा देता है, जो इन्हीं पूर्वाग्रहों को और मजबूत करते हैं. सरकारी सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस), मध्याह्न भोजन (एमडीएम) योजना और एकीकृत बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) योजनाओं के माध्यम से अनाज और बाजरा जैसे सस्ते शाकाहार को प्रोत्साहित किया जाता है, जबकि हाशिए पर या कमजोर समूहों द्वारा खाए जाने वाले पारंपरिक खाद्य पदार्थों को अक्सर नजरअंदाज किया जाता है या अवैध घोषित कर अपराध बना दिया जाता है.

परिणामस्वरूप, गरीब लोग, जो मुख्य रूप से अनाज–आधारित लेकिन पोषण में कमजोर आहार पर निर्भर होते हैं, कुपोषण के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं, जिससे उनके बच्चों में कुपोषण, रक्ताल्पता, विटामिन ए की कमी और अन्य पोषण संबंधी समस्याएं अधिक होती हैं.

इसके अलावा, कई शाकाहारी भी अनाज, चीनी, बीज के तेल (ट्रांस वसा युक्त तले हुए पदार्थ) और जंक फूड जैसे अस्वस्थ भोजन का सेवन करते हैं, जिससे मोटापा एक आम समस्या बन जाती है. खून की कमी, विटामिन बी12, विटामिन डी और कैल्शियम की कमी जैसी पोषण समस्याएं भी शाकाहारियों में पाई जाती हैं. इसके बावजूद, यही शाकाहारी व्यापक जनसंख्या पर अनाज और बाजरा जैसे पोषण–रहित भोजन थोपते हैं, गोमांस वध पर प्रतिबंध लगाते हैं और अन्य पशु उत्पादों तथा उन्हें खाने वालों को अपराधी बना देते हैं.

'मांसाहारियों को अपराधी ठहराना और वंचित समुदायों को पारंपरिक भोजन से वंचित करना'

दलित, आदिवासी और अन्य पिछड़े समुदायों द्वारा खाए जाने वाले मांस और पारंपरिक खाद्य पदार्थों को अपराध की श्रेणी में रखने की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण इन खाद्य पदार्थों तक पहुंच और भी मुश्किल होती जा रही है. यह कभी कानूनी प्रतिबंधों के रूप में तो कभी धार्मिक फरमानों के जरिए किया जाता है. घृणा केवल मांस के प्रति ही नहीं, बल्कि मांस खाने वालों के प्रति भी दिखाई जाती है, जिन्हें 'शांतिप्रिय' शाकाहारियों की तुलना में आक्रामक, हिंसक, यौन उत्पीड़क, कामुक या अपराधी के रूप में चित्रित किया जाता है.

मांसाहारी लोगों को अक्सर अपने भोजन विकल्पों के लिए शर्मिंदा किया जाता है, जिससे वे अपने घरों में भी अपने भोजन को छिपाकर खाने को मजबूर होते हैं. इसके अलावा, उन्हें निशाना बनाया जाता है, शारीरिक हिंसा का शिकार बनाया जाता है–यहां तक कि पीट-पीटकर मार डाला जाता है-मौखिक अपमान किया जाता है और उनके पारंपरिक भोजन के तरीकों को लेकर भेदभाव किया जाता है. कई संस्थान, मीडिया हाउस, कॉलेज, स्कूल और दफ्तर अपने परिसरों में डेयरी के अलावा अन्य पशु–आधारित खाद्य पदार्थों के सेवन पर प्रतिबंध लगाते हैं, जो निर्णय लेने की भूमिकाओं में शाकाहारियों की ताकत को दर्शाता है.

'सात्विक भोजन का प्रचार'

भारत को 'शाकाहारी' देश मानने की धारणा खाद्य पदार्थों को सात्विक, तामसिक और राजसिक समूहों में बांटने पर आधारित है. सात्विक भोजन में मांस, अंडे, प्याज और लहसुन आदि शामिल नहीं होते, और इन्हें बच्चों के लिए भी उचित बताया जाता है. तामसिक और राजसिक भोजन को वासना बढ़ाने, एकाग्रता कम करने और आक्रामकता उत्पन्न करने वाला माना जाता है.

अक्षय पात्र, जो इस्कॉन (इंटरनेशनल सोसाइटी फॉर कृष्णा कॉन्शियसनेस) से जुड़ा संगठन है, खुले तौर पर अवैज्ञानिक सात्विक भोजन का प्रचार करता है. यह संगठन देशभर में सरकारी मध्याह्न भोजन योजना के लिए स्कूलों में भोजन आपूर्ति का ठेका संभालता है और सरकारी निर्देशों के बावजूद अपने भोजन में अंडे, लहसुन और प्याज का उपयोग करने से इनकार करता है.

2013 में लागू राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (एनएफएसए) का उद्देश्य हर व्यक्ति को पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराना था ताकि वह स्वस्थ जीवन जी सके. लेकिन वास्तविकता यह है कि इस अधिनियम के तहत मिलने वाला भोजन अक्सर पोषण से भरपूर नहीं होता. नतीजतन, देश के कई हिस्सों में कुपोषण और बीमारियां अब भी आम समस्याएं बनी हुई हैं.

यदि सभी सामाजिक समूहों और वर्गों के कुपोषण को दूर करना है, तो भोजन से जुड़ी वर्जनाओं पर गंभीरता से ध्यान देने की जरूरत है. गर्भावस्था के दौरान महिलाओं के आहार पर कई तरह के प्रतिबंध लगाए जाते हैं, जो उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं. उदाहरण के लिए, गोरी त्वचा को लेकर भारत के जुनून के कारण यह धारणा है कि यदि गहरे रंग के भोजन खाए जाएं तो बच्चा काला होगा! इन सब वजहों से महिलाओं को पर्याप्त विविध और संतुलित आहार नहीं मिल पाता. इसी तरह, एक और भ्रम यह है कि अगर माताएं अंडे खाती हैं, तो बच्चा गंजा होगा!

खाद्य पदार्थों के 'गर्म' और 'ठंडे' होने की धारणा भी आम है. प्रसव के बाद महिलाओं को ठंडी चीजें खाने से मना किया जाता है, क्योंकि माना जाता है कि इससे माँ और बच्चे को सर्दी हो सकती है. इसी तरह, गर्म चीजों को अधिक मात्रा में खाने से भी बचने की सलाह दी जाती है.

'सस्ते शाकाहार के कारण कुपोषण'

गरीबों पर ऊपर से थोपा जा रहा सस्ता शाकाहार एक अवैज्ञानिक अवधारणा है. यदि कोई महिला खून की कमी (एनीमिया) के साथ अस्पताल जाती है, तो उसे केवल गोलियां दी जाती हैं और सब्जियां खाने की सलाह दी जाती है, लेकिन यह शायद ही बताया जाता है कि लिवर और लाल मांस एनीमिया को रोकने और कम करने में प्रभावी होते हैं.

यह विचार कि शुद्ध शाकाहारी भोजन (जिसमें दूध और सभी पशु उत्पाद भी शामिल नहीं होते) स्वास्थ्यकर है, एक विरोधाभास है. ऐसा आहार अपनाना केवल उन संपन्न वर्गों के लिए संभव है जिनके पास इसे आजमाने के लिए समय, धन और मानसिक अवकाश है. शाकाहारी आहार पूरी तरह प्राकृतिक नहीं है और इसमें कई पूरक आहार और कृत्रिम तत्वों की आवश्यकता होती है. महत्वपूर्ण बात यह है कि शाकाहारी विचारधारा के नैतिक पक्ष पर सवाल उठाना जरूरी है. प्राणियों की रक्षा के नाम पर पशु–आधारित खाद्य पदार्थों का त्याग करने का तर्क इस सच्चाई को नजरअंदाज करता है कि शाकाहारी आहार भी कई छोटे जीवों और कीटों को नुकसान पहुंचाता है.

इसके साथ ही, जलवायु परिवर्तन के बारे में भी खराब समझदारी है, जिससे उद्योग, ऑटोमोबाइल, और डिजिटल तकनीक जैसे बड़े प्रदूषक बिना जांच के बच निकलते हैं. शाकाहारी थाल सजाने की माँग को पूरा करने के लिए विभिन्न देशों से खाद्य पदार्थों को लंबी दूरी तक पहुँचाया जाता है, जिसका विकासशील देशों को भारी पर्यावरणीय नुकसान होता है. इसका नतीजा यह है कि इन देशों में ऐसे खाद्य पदार्थों की मोनो–क्रॉपिंग की जाती है, जो वहां के पारंपरिक आहार का हिस्सा नहीं हैं, जैसे बादाम, काजू, और सोयाबीन. काजू की बढ़ती खेती से गरीब महिलाओं को छिलके उतारते समय कार्डोल और एनाकार्डिक एसिड के कारण जलन और घावों का सामना करना पड़ता है.

इसके अलावा, किसान अपनी आजीविका के लिए पशुधन पर निर्भर करते हैं, और इसका पालन–पोषण एक चक्र है, जिसमें जानवरों का वध भी शामिल है. किसान हमें यह नहीं सिखाते कि जानवरों से प्रेम का अर्थ क्या है. वे कहते हैं कि चोटिल, बीमार या तड़पते हुए जानवर को मरते देखना ज्यादा दर्दनाक है, इसलिए वे उन्हें वध के लिए देना बेहतर मानते हैं.

देशभर में गौहत्या पर लगे प्रतिबंधों ने परंपरागत रूप से हाशिए पर रहे समुदायों को बड़े आर्थिक संकट में डाल दिया है. गरीब दलित और मुस्लिम पुरुषों को केवल मवेशी या गोमांस ले जाने के संदेह पर भीड़ द्वारा पीट–पीटकर मार डालने की घटनाएं बार–बार होती रही हैं. जो लोग शाकाहारी नीतियों को बढ़ावा देते हैं, उन्हें इन नीतियों से कमजोर और वंचित समुदायों पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों की नैतिक जिम्मेदारी भी लेनी चाहिए.

'कुपोषण का संकट'

जब गरीब लोग अनाज–आधारित और पोषक तत्वों से वंचित भोजन पर निर्भर रहते हैं, तो कुपोषण की समस्या बढ़ जाती है. इससे बच्चों में ठिगनापन, कुपोषण, एनीमिया और कई अन्य विटामिन व खनिजों की कमी होने की संभावना अधिक होती है.

कई शाकाहारी भी अस्वास्थ्यकर खाद्य पदार्थों का सेवन करते हैं, जैसे अधिक मात्रा में अनाज, चीनी, बीज आधारित तेल (जिनमें ट्रांस फैट होता है), और जंक फूड. इसके परिणामस्वरूप, मोटापा, मधुमेह और उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियां इन समूहों में आम हैं. नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे (एनएफएचएस) 2019 के अनुसार, 18.7 प्रतिशत महिलाओं का बॉडी मास इंडेक्स (बीएमआई) सामान्य से कम (18.5 kg/m^2 से कम) है, जबकि पुरुषों में यह आंकड़ा 16.2 प्रतिशत है. फिर भी, पुरुषों (83.4 प्रतिशत) में मांस, मछली या अंडे खाने की दर महिलाओं (70.6 प्रतिशत) की तुलना में अधिक है. पुरुष अक्सर घर के बाहर मांस या अंडे खाते हैं और कई बार घर पर इसका जिक्र भी नहीं करते. वहीं, युवा कामकाजी या कॉलेज में पढ़ने वाली महिलाएं भी अक्सर मांस खाती हैं, भले ही उनके घरों में यह वर्जित हो.

यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि सभी व्यक्तियों को, चाहे उनकी उम्र कुछ भी हो, स्वस्थ रहने के लिए पोषक तत्वों से भरपूर भोजन की आवश्यकता होती है. स्कूली बच्चे, किशोर, गर्भवती और प्रसवोत्तर महिलाएं, शिशु को दूध पिलाने वाली माताएं, और हड्डी टूटने, गैर–संक्रामक और अंदरूनी बीमारियों से जूझते बुजुर्गों को संतुलित आहार की विशेष जरूरत होती है. युवा पुरुषों और महिलाओं को भी स्वस्थ जीवन जीने के लिए पर्याप्त पोषण

चाहिए.

ईट लैंसेट कमीशन रिपोर्ट, जो मुख्य रूप से पौधों पर आधारित आहार को बढ़ावा देती है, स्वीकार करती है कि किशोर लड़कियों में मासिक धर्म के कारण आयरन की कमी का खतरा अधिक होता है. समाधान के तौर पर वह सस्ते मल्टीविटामिन या मल्टीमिनरल की गोलियों का सुझाव देती है, जो 'लाल मांस के अधिक सेवन से होने वाले दुष्प्रभावों' से बचाती हैं. लेकिन यह रिपोर्ट एनीमिया के प्रबंधन में लाल मांस के फायदों को नजरअंदाज करते हुए किशोरियों को नियमित रूप से आयरन की गोलियां लेने की सलाह देती है. यह मानना गलत है कि हीमोग्लोबिन का निर्माण, जो शरीर के अंगों तक ऑक्सीजन पहुंचाता है, केवल एक खनिज (आयरन) से पूरा हो सकता है. हीमोग्लोबिन निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें कई पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जो पशु–आधारित खाद्य पदार्थों, विशेषकर मांस से, सबसे बेहतर रूप में प्राप्त होते हैं.

यह रिपोर्ट यह भी कहती है कि गर्भावस्था के दौरान, विशेषकर तीसरी तिमाही में, मां के आहार में पशु–आधारित भोजन भ्रूण के विकास के लिए आवश्यक है. साथ ही, शाकाहारी भोजन करने वालों को विटामिन B12 के लिए पूरक आहार की जरूरत होती है. इस प्रकार, जो पोषक तत्व पहले भोजन से मिलते थे, उन्हें अब गोलियों और सप्लीमेंट्स से प्राप्त करने की बात हो रही है. विडंबना यह है कि यह समूह मांस की तुलना में शर्करा से अधिक कैलोरी सेवन की सिफारिश करता है.

''दयालु' कॉर्पोरेट्स'

बियॉन्ड मीट जैसी कंपनियों द्वारा, जो बिल गेट्स के वित्तीय समर्थन से चलती हैं, मांस के विकल्प के रूप में जो पौधे–आधारित विकल्प दिए जाते हैं, उनमें पानी, मटर प्रोटीन, कैनोला तेल, नारियल तेल, चावल प्रोटीन, प्राकृतिक फ्लेवर, सूखा यीस्ट, कोकोआ मक्खन, मिथाइल सेलुलोज, आलू स्टार्च, नमक, पोटैशियम क्लोराइड, चुकंदर का रस, सेब का अर्क, अनार का गाढ़ा रस, सूरजमुखी लेसिथिन, सिरका, नींबू का सिरका , और विभिन्न विटामिन और खनिज, जिनमें जिंक सल्फेट, नियासिनामाइड, पाइरिडोक्सिन हाइड्रोक्लोराइड, सायनोकोबालमिन, कैल्शियम पैंटोथेनेट आदि शामिल हैं. क्या कोई ईमानदारी से कह सकता है कि यह वही सबसे अच्छा भोजन है जिसे मनुष्यों को अपनाने का सपना देखना चाहिए?

ऐसा प्रतीत होता है कि हर तथाकथित नैतिक या नैतिक दुविधा का समाधान कॉर्पोरेट्स पर और अधिक निर्भरता बन गया है. पौधे–आधारित भोजन को बढ़ावा देने वाली कहानी के पीछे कॉर्पोरेट्स की सक्रिय भूमिका है. लेकिन वास्तव में, भारतीय शाकाहार की जड़ें प्राचीन काल में जैन धर्म के विकास में निहित है.

अरबपतियों द्वारा वित्त पोषित ईट लैंसेट कमीशन 'पौधे–आधारित भोजन के सेवन को बढ़ाने और पशु–आधारित भोजन के उपभोग को कम करने' के लिए 'वैज्ञानिक लक्ष्य' निर्धारित करता है और भारत को इस क्षेत्र में 'दुनिया को दिखाने के लिए एक अच्छा उदाहरण' बताता है.

हालांकि, ईट लैंसेट कमीशन भी यह स्वीकार करने से इनकार नहीं कर सकता कि पौधे–आधारित आहार कुपोषित लोगों के लिए पोषण की दृष्टि से अपर्याप्त है, इसलिए वे 0–2 वर्ष के बच्चों को अपने पौध–आधारित आहार की सिफारिशों से बाहर रखते हैं. क्या इसका व्यावहारिक अर्थ यह है कि बच्चों को दो साल की उम्र तक पशु–आधारित भोजन दिया जाए और उसके बाद फिर इनसे वंचित कर दिया जाना चाहिए?

'खाद्य संप्रभुता और पोषण नीति'

पशु–आधारित पोषक तत्वों से भरपूर खाद्य पदार्थों को प्रयोगशालाओं में बने रसायनों से बदलना, जिन्हें हवाई या समुद्री मार्ग से लाना पड़ता है, जलवायु संकट को और गंभीर बना देता है. जलवायु परिवर्तन पर चिंता जताने वाले बहुराष्ट्रीय निगम पश्चिमी देशों से पोषण संबंधी पूरक पदार्थों की आपूर्ति को बढ़ावा देते हैं, जिससे भारत की खाद्य संप्रभुता को गहरा खतरा है.

कॉर्पोरेट्स पर निर्भर पोषक तत्वों की पूर्ति, अत्यधिक प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ और पैकेज्ड खाद्य पदार्थ कोई स्थायी समाधान नहीं हैं. पोषण नीतियों और स्वास्थ्य संबंधित शिक्षा का आधार विज्ञान होना चाहिए, न कि विचारधारा या प्रचार.

<u>तमिलनाडु</u>

छात्रा के लिए न्याय की मांग

तमिलनाडु के अन्ना विश्वविद्यालय में इंजीनियरिंग की एक छात्रा के साथ यौन दुर्व्यवहार की एक घटना सामने आई। इस घटना की चौतरफा निंदा हुई और पूरे राज्य में आंदोलन उठ खड़ा हुआ। विपक्षी दलों–एआइएडीएमके और बीजेपी ने इस मुद्दे को डीएमके सरकार के खिलाफ इस्तेमाल करने की कोशिश की। इन पार्टियों ने महिलाओं की सुरक्षा और अपराधियों के खिलाफ कार्रवाई की मांग के लिए मुख्यमंत्री से मिलने के बदले राज्यपाल को ज्ञापन देने का रास्ता चुना।

ऐपवा ने यहां 5 जनवरी को बैठक कर इस मुद्दे पर राज्यव्यापी प्रतिवाद का निर्णय लिया। 10 जनवरी को राज्य के कई जिलों में यौन हिंसा रोकने और महिलाओं के लिए बेखौफ आजादी की मांग करते हुए ऐपवा द्वारा प्रतिवाद कार्यक्रम आयोजित किया गया।

इस प्रतिवाद कार्यक्रम का नेतृत्व पुडुकोट्टई में ऐपवा की राज्य संयोजक रेवती, कोयंबटूर में फिनोमिना, वेल्लोर में सरोजा, मदुरई में वालीमाइल, कन्या कुमारी के कोलाचल में कारमेल व माले की राज्य कमिटी सदस्य सुशीला ने किया। माधवी ने मइलादुत्तरई में कार्यक्रम आयोजित किया।

ऐपवा ने राज्य महिला आयोग को भी पत्र भेजने का निर्णय लिया।

बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार की प्रगति यात्रा के दरम्यान बिहार में स्कीम वर्कर महिलाओं ने अपनी मांगों को लेकर प्रदर्शन किया। प्रदर्शन का नेतृत्व ऐपवा की राज्य अध्यक्ष सोहिला गुप्ता और ऐपवा व स्कीम वर्कर नेता मालती राम ने किया।

हेमा समिति रिपोर्ट : मलयालम फिल्म उद्योग में महिलाओं की स्थिति

◆ रवि राव ई

केरल सरकार द्वारा 2017 में गठित तीन सदस्यीय न्यायमूर्ति हेमा समिति की रिपोर्ट ने मलयालम सिनेमा में महिलाओं द्वारा सामना किए जाने वाले मुद्दों पर एक ऐतिहासिक रिपोर्ट प्रस्तुत की है. इस रिपोर्ट में फिल्म उद्योग में महिलाओं के खिलाफ लैंगिक भेदभाव, यौन उत्पीड़न, शक्ति का दुरुपयोग और शोषण की गंभीर आलोचना की गई है. 2017 में स्थापित महिला सिनेमा कलेक्टिव (WCC) ने फिल्म उद्योग में महिलाओं से संबंधित कई मुद्दों को उठाया था. महिला फिल्म कलेक्टिव द्वारा मुख्यमंत्री को दी गई याचिका के जवाब में हेमा समिति का गठन हुआ था. समिति में न्यायमूर्ति के. हेमा (अध्यक्ष), केरल उच्च न्यायालय की पूर्व न्यायाधीश, श्रीमती टी. शारदा, एक कलाकार, और श्रीमती के.बी. वालसला कुमारी, केरल सरकार की पूर्व प्रधान सचिव (सेवानिवृत्त) शामिल थीं. यह रिपोर्ट अगस्त 2024 में जारी की गई, जो कि समिति द्वारा राज्य सरकार को रिपोर्ट सौंपे जाने के पांच साल बाद आई, जिसमें व्यक्तियों की गोपनीयता की रक्षा के लिए कुछ हिस्सों को संपादित किया गया था.

रिपोर्ट में यह निष्कर्ष सामने आया कि ''यौन उत्पीड़न वह सबसे बुरी बुराई है, जिसका सामना फिल्म उद्योग में महिलाएं करती हैं,'' और यह माना गया कि अधिकांश महिलाएं अपने दर्दनाक अनुभवों को साझा करने से हिचकिचाती हैं क्योंकि उन्हें इसके परिणामों का डर रहता है, जैसे कि उद्योग से प्रतिबंधित कर दिया जाना.

कई महिलाओं ने समिति को बताया कि वे काम पर जाते समय अक्सर अपने माता–पिता या करीबी रिश्तेदारों के साथ जाती हैं, ''क्योंकि सिनेमा में मौका मिलने के साथ यौन शोषण की मांग भी की जाती है,' और इसलिए वे अपने कार्यस्थल पर अपनी सुरक्षा को लेकर चिंतित रहती हैं.

जो महिलाएं समिति के सामने गवाही देने आई थीं, उन्होंने सेट्स पर बदलने के कमरे और शौचालयों की कमी को एक प्रमुख समस्या के रूप में उठाया.

रिपोर्ट में यह भी खुलासा किया गया कि शक्तिशाली पुरुषों का एक समूह फिल्म उद्योग पर नियंत्रण रखता है और जिनसे नाखुश होता है, उन्हें अनौपचारिक रूप से 'बैन' कर देता है.

हालाँकि दस्तावेज से सभी पहचानकर्ता और यहां तक कि आरोपियों के नाम भी हटा दिए गए थे, रिपोर्ट ने कई यौन उत्पीड़न पीड़िताओं को सार्वजनिक रूप से सामने आने के लिए प्रेरित किया, जिन्होंने उद्योग के बड़े नामों को नामित किया और शर्मिंदा किया. जिन प्रमुख अभिनेता और निर्देशकों का नाम लिया गया है, उनमें सिद्धीक, मुकेश, जयसुयर्या, मणियनपिल्ला राजू, निर्देशक रंजीत, साजिन बाबू, वी.ए. श्रीकुमार और अन्य शामिल हैं.

'हेमा समिति रिपोर्ट के मुख्य निष्कर्ष'

हेमा समिति रिपोर्ट ने मलयालम फिल्म उद्योग में कई गंभीर मुद्दों का पर्दाफाश किया है. समिति ने पाया कि फिल्म उद्योग में महिलाएं अक्सर यौन उत्पीड़न, भेदभाव और असुरक्षित कार्य परिस्थितियों का सामना करती हैं. रिपोर्ट में उजागर किए गए कुछ प्रमुख मुद्दे इस प्रकार हैं :

'यौन शोषण' – 'कास्टिंग काउच' की व्यापकता महिला कलाकारों के यौन शोषण की समस्या को दर्शाती है, जो उद्योग में प्रवेश करने वाली महिलाओं के लिए आम हो गई है.

'उत्पीड़न और शोषण' – महिलाएं कार्यस्थल और परिवहन के दौरान यौन उत्पीड़न, शोषण और हमलों का शिकार होती हैं, और जो इसका विरोध करती हैं, उन्हें अक्सर यातना दी जाती है.

'सुरक्षा और सुविधाएं' – बुनियादी सुविधाओं की कमी और विशेष रूप से बाहरी स्थानों पर सुरक्षा संबंधी चिंताएं महिलाओं के लिए स्वास्थ्य समस्याओं और असुरक्षित परिस्थितियों का कारण बनती हैं.

'भेदभाव और वेतन अंतर' – फिल्म उद्योग में लिंगभेद स्पष्ट है, जिसमें पुरुषों और महिलाओं के वेतन में बड़ा अंतर है, और जूनियर कलाकारों को अक्सर अत्यधिक कठिन कार्य परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, जिसके लिए उन्हें न्यूनतम वेतन मिलता है.

'कानूनी और अनुबंध संबंधी मुद्दे' – कानूनी जागरूकता की कमी और आंतरिक शिकायत समिति (ICC) का अप्रभावी होना इन शिकायतों को दूर करने में बड़ी बाधा है. समस्याओं में अनुबंधों का न लागू होना और तय वेतन का भुगतान न होना शामिल है.

'गहरा लिंगभेद पूर्वाग्रह' – रिपोर्ट ने यह भी बताया कि उद्योग में लिंग असमानता गहराई से जड़ जमा चुकी है, जहां पुरुष प्रमुख भूमिकाओं में होते हैं और महिलाएं अक्सर हाशिए पर होती हैं.

'सिफारिशें'

हेमा समिति रिपोर्ट ने मलयालम फिल्म उद्योग में महिलाओं के लिए कार्य परिस्थितियों को सुधारने के लिए कई सिफारिशें की हैं. इनमें से कुछ प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं :

'शिकायत निवारण तंत्र' : रिपोर्ट में यौन उत्पीड़न और अन्य समस्याओं से संबंधित शिकायतों को संभालने के लिए एक समर्पित आंतरिक शिकायत समिति (ICC) गठित करने की सिफारिश की गई है.

'कानूनों का कड़ाई से पालन' : हेमा समिति रिपोर्ट ने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न और लिंग समानता से संबंधित मौजूदा कानूनों के कड़ाई से पालन की आवश्यकता पर बल दिया है. कुछ सदस्य स्वतंत्र न्यायाधिकरण स्थापित करने के पक्ष में थे.

'जागरूकता कार्यक्रम' : रिपोर्ट में उद्योग के कास्ट और क्रू को सुरक्षित कार्य वातावरण बनाए रखने के महत्व के बारे में शिक्षा देने के लिए अनिवार्य जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करने की सिफारिश की गई है.

'महिलाओं का अधिक प्रतिनिधित्व' : रिपोर्ट ने उद्योग में निर्णय लेने वाली भूमिकाओं में महिलाओं का अधिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर जोर दिया है, जैसे कि महिलाओं द्वारा निर्मित फिल्मों के लिए एकल विंडो प्रणाली के तहत ऋण की व्यवस्था.

'महिलाओं के लिए सहायता तंत्र' : रिपोर्ट में यौन उत्पीड़न या भेदभाव का सामना करने वाली महिलाओं की सहायता के लिए परामर्श सेवाओं सहित अन्य मदद के लिए समर्थन तंत्र की स्थापना की सिफारिश की गई है. ●

स्टिलेटो

◆ तूलिका

पारदर्शी शीशे से झाँकती, शीशे की ही रैकों पर करीने से सजी, ग्लॉसी, नुकीली, ऊंची हील्स, देखने वाले की आँखों में लालच भरने को काफी हैं। ऐसे जूते, जो किसी भी औरत (और मर्दों को भी) को भी एक पल रुककर देखने मजबूर कर दें। ये उपयोग, अनुपयोग की कवायद से अलहदा हैं। अँग्रेजीदां नई पीढ़ी इन्हें स्टिलेटो (Stiletto) कहना पसंद करती है। समाज के मध्यवर्ग से ऊपर की ओर निगाह रखने वाली हर औरत की या तो यह धरोहर है या फिर सपना, फिर चाहे वह इस ग्लोब के किसी भी हिस्से में जी रही हो। हमारे दिलो–दिमाग पर तमाम किस्म के विज्ञापनों से 3′–4′ इंच ऊंची इन स्टिलेटो सैंडीलों की एक खास छवि बनी है। आम तौर पर यह छवि ग्लैमर/फैशन की नियोन, सतरंगी या फिर कॉर्पोरेटी स्लेटी–सफेद जैसे विरोधी बैकग्राउंड में आँखों के सामने फ्लैश करती है। दूसरे शब्दों में कहें तो महिला की सर्वस्वीकृत ऐंद्रिक छवि और नई दुनिया की प्रभावशाली, ताकतवर, आजाद छवि के सम्मिलित प्रतीक के रूप में उभरती हैं ये स्टिलेटो सैंडीलें।

श्रोतों की माने तो ऐतिहासिक रूप से जूतों के पीछे के हिस्से में ऊंचाई (हील्स) की शुरुआत 9 वीं 10 वीं सदी में मध्य एशिया के पुरुषों के जूतों के साथ हुई। यह बनावट घुड़सवारी में दोनों किनारे पर लटके छल्ले में पैर टिकाने की सहूलियत के मद्देनजर तैयार की गई थी। उसके बाद मध्यकाल तक फ्रांस में हील वाले ऊंचे जूते पहले पुरुषों और फिर वहाँ की अमीर औरतों की हैसियत का प्रतीक बन गए। फ्रांसीसी क्रान्ति से जन्मी तार्किकता का असर था कि पुरुषों ने इसे असहज माना और सुभीते से यह जल्द ही स्त्री नजाकत का प्रतीक बन गया। इसके बाद सभ्यता के अन्य चलन और मानकों की तरह यह भी ब्रिटेन की रानी के खानदान से होते हुए दुनिया भर की अमीरों की पार्टियों के अलिखित कायदों में शुमार हो गया।

हम यहाँ ऊपर से चौड़ी और नीचे जमीन तक आते–आते बिलकुल नुकीली स्टिलेटो हील्स की बात कर रहे हैं। मूलतः इतावली भाषा का यह शब्द 'स्टिलेटो', हमले के लिए काम आने वाले तेज धार और सुई की तरह नोक वाले चाकू के लिए इस्तेमाल होता है। क्या पता सबसे पहले स्टिलेटो सैंडील बनाने वाले ने इसी गुण–धर्म को अपनी रचना में संकल्पित किया हो !

खैर ये स्टिलेटो सैंडीलें दुनिया में दूसरे विश्व युद्ध के समय से 'पिन अप गर्ल्स' (युद्ध के समय घरों से दूर सैनिकों के लिए टैंकों, हेलिकॉप्टरों, बैरकों में टाँगने लायक पोस्टेर्स जिन पर महिला मॉडलों की कामुक तस्वीरें होती थीं) के माध्यम से चलन में आई और महिलाओं की सेक्स अपील का प्रतीक बन गई। 80 के दशक से पूंजी की नई गतिकी ने इसे भी कॉर्पोरेट ऑफिसों का नया रास्ता दिखाया।

हमारे देश में जूतों/महिलाओं के जूतों की कहानी जाति और पितृसत्ता के खूनी पंजों में कसकती आगे बढ़ती है। जूते में चमड़े का इस्तेमाल होने के कारण हमारे यहाँ यह काम दलितों (चमार जाति) के जिम्मे था। जिन्हें अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति के चलते जूते पहनने की इजाजत न थी। इसी से मिलती जुलती स्थिति महिलाओं की भी थी। दलित समाज से इतर महिलाओं के मामले में शायद आम वजह यह रही हो कि एक तो महिलाओं का घर से निकलना ही बहुत कम था और दूसरे घर के भीतर जूते पहनने का हमारे समाज में रिवाज नहीं रहा। हालांकि 15–वीं 16 वीं सदी के बाद मुगल काल के तमाम शैली के चित्रों में रंग–बिरंगी, कसीदाकारी से सजी कपड़ों/चमड़ों की जूतियाँ दिखती हैं जो आज भी नागरे के नाम से एथनिक कही जाने वाली दुकानों में थोड़े बदले रूप में दिख जाती हैं। पर तय है कि ये उस जमाने में राजघराने या बड़े जमींदारों के घरों की औरतों तक ही सीमित रही होंगी क्यूंकि उन्हीं के पास बाग–बगीचे जैसी बाहर घूमने की जगहें होने की संभावना है। हालांकि गरीब महिलाएं घरों के बाहर खेतों पर काम करने, मजदूरी करने, जमींदारों के घरों में काम करने के लिए तो निकलती ही रही होंगी, पर उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति इस तरह के शौक रखने की इजाजत दे, इसकी गुंजाइश कम ही है।

तो मोटे तौर पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 20वीं सदी के आस–पास ही इतिहास में पहली बार हमारे यहाँ मध्यम आर्थिक स्थिति वाली महिलाओं का छोटा सा तबका चप्पलें पहनकर घरों से बाहर निकला होगा और इन चप्पलों की सामूहिक मांग बनी होगी। आजादी के पहले (गांधी के आंदोलन में शामिल महिलाओं की तस्वीरें) और उसके कुछ समय बाद तक की उपलब्ध तस्वीरें देखें तो औरतों के पैरों में पुरुषों जैसी ही चमड़े की चप्पलें दिखती हैं। बस वे पुरुषों की चप्पलों से थोड़ी छोटी और पतली हुआ करती थीं। लंबे समय तक भारत की अधिकांश औरतों के पैरों की साथी, स्थानीय स्तर पर बनने वाली यही चप्पलें रहीं। फिर धीरे–धीरे इन्हीं स्थानीय चप्पलों की हील्स ऊंची होनी शुरू हुई। और जिसे हम आज स्टिलेटो के नाम से जानते हैं उसकी आमद तो हमारे देश में काफी देर से हुई।

3′ से 4′ सेंटीमीटर ऊंची स्टिलेटो में पैर के पंजे और एड़ियां अपनी सामान्य

स्टिलेटो पहनने पर वक्ष के आगे, पीठ के सीधे, कूल्हों के पीछे की ओर और टांगों के लंबे होने के आभास की खास देह–स्थिति के मद्देनजर इसे 'सेक्सी' दिखने में मदद जैसे पुराने समाजों के सपाट तर्कों के ऊपर धीरे–धीरे आधुनिक उपभोक्तावादी 'स्मार्ट' दलीलों की परतें चढ़नी शुरू हुई। 'ऊंचे लोग (कद) ऊंची पहचान'।

स्थिति में नहीं रहती हैं इसलिए इनमें चलने के लिए अभ्यास के साथ–साथ कुछ पूर्व भौतिक शर्तों का होना भी जरूरी है, जैसे चलने की जगह सपाट होनी चाहिए क्यूंकि ऊंची–नीची सतह में आप डगमगा सकते हैं, पैरों के एक खास एंगल में होने के कारण आप छोटे–छोटे कदम ही भर सकते हैं तो पैदल लंबी दूरी तय नहीं कर सकते, दुपहिया गाड़ी भी नहीं चलेगी क्यूंकि उस पर चढ़ने, पैर टिकाने और उतरने तीनों में लड़खड़ाने का खतरा रहेगा, अधिक भीड़–भाड़ वाली जगहों से दूरी बनाए रखनी होगी क्यूंकि वहाँ लोगों से टकराने से बचने में आपका फोकस पैरों से हट जाएगा और संतुलन बनाए रखना मुश्किल होगा। अलावा इसके उठने–बैठने की सेटिंग भी पश्चिमी ढंग की ही होनी चाहिए, आदि आदि।

कुछ अरसे पहले तक हमारे कस्बाई समाज में ऊंची हील गैर–वाजिब लालसा के प्रतीक के बतौर मजाक का बायस थी। समाज के हर इंसान की ऊंची हील पहनने वाली औरत के प्रति एक खास धारणा हुआ करती थी; आवारा लड़कों के पास इनके लिए फिकरे थे, माँ–भाभी, सास–ननद के पास अलग–अलग कोनों से जन्मी आशंकाएं/बोलियाँ, बहन–सहेलियों के पास सलाहें, पिता–चाचा–ताऊ के पास चिंताएँ तो अड़ोसी–पड़ोसी, अजनबियों की उसकी चरित्र आँकती निगाहें थीं। बावजूद इन सबके उम्र और आर्थिक/सामाजिक स्थितियों से परे, एक बार इसमें पैर डालने की हर औरत की हसरत छिपाये न छिपती; इस चाह की चालक शक्ति क्या है ?

स्टिलेटो पहनने पर वक्ष के आगे, पीठ के सीधे, कूल्हों के पीछे की ओर और टांगों के लंबे होने के आभास की खास देह–स्थिति के मद्देनजर इसे 'सेक्सी' दिखने में मदद जैसे पुराने समाजों के सपाट तर्कों के ऊपर धीरे–धीरे आधुनिक उपभोक्तावादी 'स्मार्ट' दलीलों की परतें चढ़नी शुरू हुई। 'ऊंचे लोग (कद) ऊंची पहचान'। 'तजुर्बा बताता है कि कद मायने रखता है, और व्यवहारबुद्धि कागज पर लिखे और असल में दुनिया चलाने वाले नियमों में फर्क करना जानती है...यह व्यवहारबुद्धि बताती है कि आप, समाज में दूसरे दर्जे की हैसियत रखती हैं और यह आपकी सामाजिक हकीकत है...तो इस हकीकत को अपने पक्ष में इस्तेमाल करना सीखना होगा... इस सामाजिक कमजोरी से पार पाने के लिए आपको अपनी सबसे बड़ी पूंजी औरतों के प्रति पुरुषों के आकर्षण, का भी इस्तेमाल करना आना होगा'। 'गौर कीजिये, आमतौर पर जब आप सीधी खड़ी होती हैं और चलती हैं, तो दो पैरों के बीच जगह बनती है, वह एक तरह के मर्दानापन का एहसास कराती है, पर जब आप इन स्टिलेटो में होती हैं तो सीधी पीठ के साथ ही सीधी रेखा में छोटे-छोटे कदमों से चलना होता है, जिससे आपके पैरों के बीच जगह नहीं दिखती और देखने वाले को आपमें बोल्डनेस के साथ–साथ नजाकत साफ दिख जाती है', फैशन/ग्लैमर दुनिया से इस तरह के न जाने कितने ही तर्क 90 के दशक के बाद से तमाम विज्ञापन/मीडिया प्लेटफॉर्म पर आने लगे।

कहना न होगा कि व्यावहारिकता से लेकर स्वास्थ्य तक के हवाले से, इसके खिलाफ जो तर्क दिये जाते हैं वो सीधी पीठ वाली 4' सेमी. ऊंची स्टिलेटो पहने किसी लड़की की नजर में चुक चुकी, बचकानी और उबाऊ बकवास ही लगती होगी। सालों के तजुर्बे से वे 'विवेकबुद्धि' से जन्मी तमाम सलाहों के रेडीमेड जवाबों से लैस हैं जैसे– 'इसे पहनकर आप भाग–दौड़ नहीं सकते' जवाब है, 'यह सफलता की उस स्थिर जगह के लिए है, जहां पहुँचने के बाद आपकी टांगों को नहीं भागना पड़ता, दिमाग के भागने की जरूरत होती है'... 'इसे पहनने से पैरों के रक्त प्रवाह में अडचन होगी, पाँव में दर्द आ जाएगा' जैसी सलाहों के लिए तैयार दलील है कि 'अव्वल तो कुछ पाने के लिए तकलीफें झेलनी ही पड़ती हैं, और दूसरे ऐसे तो पूरा दिन कम्प्यूटर के सामने बैठने से आँखों और सर्वाइकल की परेशानियाँ आती हैं, सबको पता होता है, फिर भी हर रोज कम्प्यूटर के सामने के घंटे बढ़ते जाते हैं; हर जगह की कुछ शर्तें होती हैं जिन्हें पूरा करना पड़ता है'। शायद ग्लैमर/फैशन के साथ साथ कॉर्पोरेट दुनिया में भी 'सफलता' के लिए स्टिलेटो ऐसी ही कुछ अलिखित शर्तों में से एक है।

चमकते, सर झुका देने को मजबूर कर देने वाले और ठीक स्टिलेटो चाकू जैसे ही धार वाले हमलावर इन तर्कों को गढ़ने और इन्हें लोगों के न्यूरो सिस्टम का हिस्सा बना देने में व्यवस्था को दशकों लगे। उसने इस छटपटाती 'दूसरे दर्जे' की अस्मिता के लिए दरवाजे तो खोल दिये पर अंदर आने के कायदे बाकायदा अलग रखे। अंदर आने के इस मौके को गंवाना इस सदी की शब्दावली में आत्महत्या कहलाता है। उनके पास अब इसके भीतर से ही दुनिया देखने का विकल्प है। पीठ सीधी, तनी रखनी है पर आँखों और दिमाग से सामने नहीं देखना है बल्कि इन दोनों से ही सामने वाले की आँख और दिमाग के रास्ते खुद को सीधा खड़ा देखे जाने के रोमांचक एहसास से आत्मविश्वास हासिल करना है; यही नियम और कायदा है। धरातल के इस बदलाव के साथ ही जिंदगी भर से चुभती आई खुद की और आस–पास की छटपटाहटों की परिभाषाएँ बदलने लगती हैं। दुनिया बदलने की जगह, दुनिया चलाने और तय दिशा में बढ़ाने की ताकतों में शामिल होने की लालसा में इस स्टिलेटो की खट–खट करती आवाज भी घुल–मिल जाती है। ●

बीपीएससी प्रकरण

भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ा युवा पीढ़ी का भविष्य

प्रीति कुमारी
राज्य अध्यक्ष,आइसा

पिछले दस सालों में बिहार के अंदर यूपीएससी, बीपीएससी 67वीं पीटी, नीट, नेट, बिहार पुलिस, दारोगा, बिहार एसएससी जैसी कई बड़ी प्रतिस्पर्धा परीक्षाओं के प्रश्न पत्र लीक हुए हैं, लेकिन इस बार 70 वीं पीटी प्रश्न पत्र लीक मामले में छात्र सड़क पर उतर आए हैं और पिछले दो महीनों से उनका आंदोलन चल रहा है।

बिहार सरकार के स्तर पर प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति के लिए बिहार लोक सेवा आयोग (बीपीएससी) द्वारा परीक्षा ली जाती है। पहले प्रारंभिक परीक्षा होती है। इस वर्ष हुई प्रारंभिक परीक्षा (पीटी) को बीपीएससी 70वी. संयुक्त प्रारंभिक प्रतियोगी परीक्षा (70वीं पीटी) के नाम से जाना जाता है। इस वर्ष 2031 पदों के लिए चार लाख तिरासी हजार अभ्यर्थी शामिल हुए लेकिन आयोग की लापरवाही से ऑनलाईन पोर्टल नही खुलने पर 80,000 छात्र पीटी से वंचित रहे।

पोर्टल पुनः खोलने व नॉर्मलाइजेशन का विरोध करते हुए छात्रों ने दोबारा परीक्षा की मांग की है। छात्रों की मांग को अनसुना कर 13 दिसंबर 2024 को बिहार के 911 सेंटरों पर पीटी आयोजित की गई. जिसमें सबसे बड़ा सेंटर पटना का बापू सभागार था जहां 12,000 अभ्यर्थीयों की परीक्षा थी। यह वही सेंटर है जिसमें पीटी में बैठे सभी अभ्यर्थीयों को समय पर प्रश्नपत्र नही मिला। घंटो लेट होने के बाद प्रश्न पत्र दिया गया। प्रश्न पत्र की संख्या कम थी। जाहिर है यह पेपर लीक का मामला था जिससे आक्रोशित अभ्यर्थी सेंटर से बाहर निकल परीक्षा रद्द करने की मांग करने लगे। कई दिनों के आंदोलन के बाद आयोग ने बापू सभागार केन्द्र पर कुछ अनियमितता स्वीकारी और वहां दोबारा परीक्षा की बात की लेकिन सभी केन्द्रों की परीक्षा को रद्द करने से इंकार कर दिया। पेपर लीक के इस मामले में छात्र आयोग के पदाधिकारियों और शिक्षा माफियाओं की भूमिका की जांच की मांग भी कर रहे हैं। सरकार ने इन सब से इंकार कर आंदोलनकारियों पर पुलिस दमन शुरू कर दिया है। प्रदर्शनों पर लाठीचार्ज किया गया और सीसीटीवी फुटेज के आधार पर छात्रों की गिरफ्तारी हो रही है, लेकिन इस बार छात्र भी पीछे हटने के मूड में नहीं हैं।

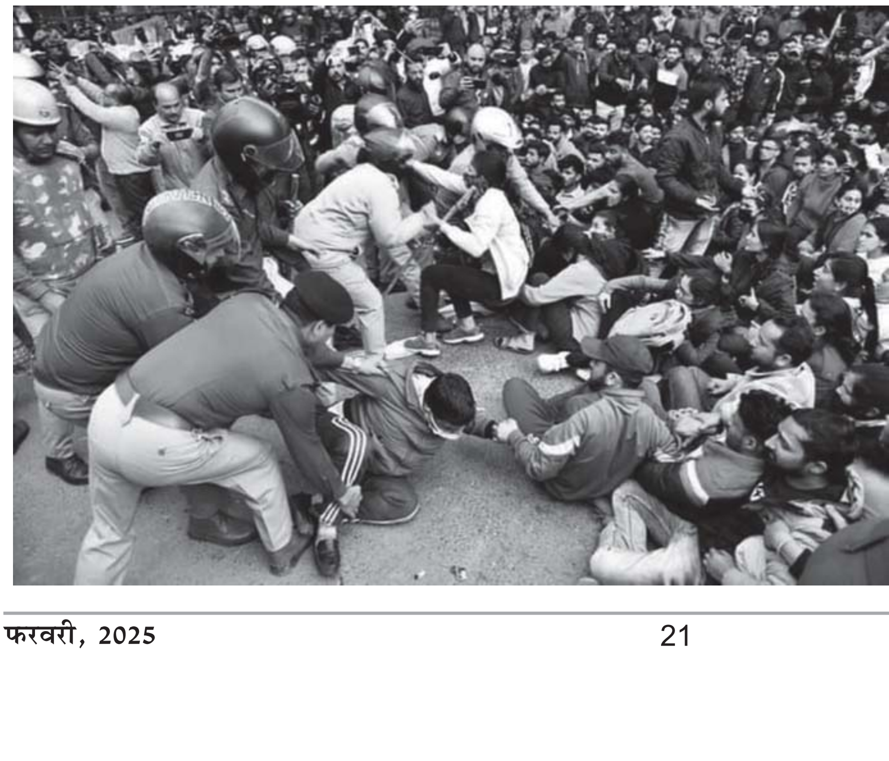

बीपीएससी अभ्यर्थीयों के समर्थन में आइसा–आरवाइए ने पूरे बिहार में चक्काजाम आंदोलन किया। इसके बाद आइसा–आरवाईए सहित अन्य दल के छात्र–युवा संगठन ने मुख्यमंत्री कार्यालय का घेराव किया। इस बीच मेधावी अभ्यर्थी सोनू कुमार ने आयोग व सरकार से गुहार लगाते हुए परीक्षा में पारदर्शिता के साथ वन टाइम वन परीक्षा की मांग पूरी नहीं होते देख हतोत्साहित होकर अपनी जान की आहुति दे दी.

(एनसीआरबी की रिपोर्ट के अनुसार पिछले पांच सालों में तेरह हजार से ज्यादा प्रतियोगी छात्रों ने आत्महत्या की है)

बिहार में उच्च शिक्षा में छात्राओं की बात करें तो स्थिति और भी बुरी है। उच्च शिक्षा में फीस वृद्धि, कैम्पस में अराजकता का महौल उनमें असुरक्षा का भाव पैदा करता है। बिहार के ग्रामीण इलाकों और छोटे शहरों में कॉलेज और कोचिंग का अभाव है, ऐसे में आर्थिक तंगी झेलते हुए भी लड़कियां किसी तरह बड़े शहरों में पहुंच रही हैं, लेकिन यहां भी हॉस्टलों में असुरक्षा, छेड़खानी और दुष्कर्म की घटनाओं का बढ़ता आंकड़ा उन्हें हतोत्साहित करता है। अब शिक्षा के क्षेत्र में फैला भ्रष्टाचार उनकी राह में बाधा बनकर खड़ा हो गया है।

अपने घर–परिवार से दूर रह कर यूपीएससी–बीपीएससी, मेडिकल, इंजिनियरिंग जैसी प्रतिस्पर्धा वाली परीक्षाओं की कई सालों से तैयारी कर रही छात्राओं को अब अपना भविष्य अंधकारमय लगने लगा है।

पेपर लीक पर सरकार के इस अड़ियल रवैए से साफ दिखता है कि सरकार शिक्षा क्षेत्र में फैली अराजकता और शिक्षा माफियाओं के सामने सरेंडर कर चुकी है।

बहरहाल, बापू सभागार के अभ्यर्थियों की दोबारा परीक्षा ली गई है। इधर छात्रों का धरना जारी है। छात्रों ने कोर्ट का दरवाजा भी खटखटाया है। कोर्ट के फैसले पर इन नौजवानों का भविष्य टिका है। ●

गाजा नरसंहार : महिलाओं के अस्तित्व और मातृत्व पर हमला रोकने के लिए सिर्फ युद्ध विराम पर्याप्त नहीं

◆ मनमोहन कुमार

गाजा में 19 जनवरी से लागू युद्धविराम ने अस्थाई राहत जरूर दी है, लेकिन यह इजरायल की नरसंहारपूर्ण नीतियों और औपनिवेशिक उद्देश्यों को रोकने में असफल है. यह युद्धविराम न तो कब्जे वाले फिलस्तीन और वेस्ट बैंक पर जारी इजरायली हमलों को समाप्त करता है, न ही गाजा की 17 साल पुरानी घेराबंदी को खत्म करता है, जो अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार और जीनोसाइड कन्वेंशन के तहत नरसंहार की श्रेणी में आती है.

संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार, अगर गाजा की घेराबंदी जारी रही, तो इसे पुनर्निर्माण में 350 साल लग सकते हैं. इस बीच, वेस्ट बैंक और जेनिन में इजरायली हमले जारी हैं, जहां दर्जनों फिलिस्तीनियों की हत्या और हजारों का जबरन विस्थापन किया गया है.

फिलिस्तीनी महिलाओं के लिए पिछले 16 महीने से हर एक पल, हर एक सेकंड मौत, विस्थापन और भूख से लड़ते हुए, जल, थल और आकाश से बरसते बमों का सामना करने में गुजरा है–आशंकाओं और नरसंहार के साए में. उनके दर्द और आंसुओं ने मिलकर एक ऐसा डेल्टा बनाया है , जिसके लिए कोई नाम और शब्द नहीं है; शायद भविष्य के भूगोलवेत्ता और इतिहासकार ही इसे कोई नाम देंगे.

'महिलाओं के अस्तित्व और मातृत्व पर हमला'

गाजा नरसंहार में फिलिस्तीनी महिलाओं को युद्ध और विस्थापन के बीच सबसे अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है. गाजा स्वास्थ्य मंत्रालय के अनुसार, 47,000 से अधिक फिलिस्तीनी मारे गए हैं और 20 लाख से ज्यादा लोग विस्थापित हुए हैं. प्रतिष्ठित लैंसेट मेडिकल जर्नल के मुताबिक, मौतों का आंकड़ा 80,000 से अधिक हो सकता है, जो गाजा की युद्ध–पूर्व जनसंख्या का लगभग 2.9% है.

इजराइल की जनसंहारी नीति विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों को निशाना बनाती है. उनका मानना है कि महिलाओं और बच्चों को मारने से फिलिस्तीन में ''जीवन के पेड़'' को पनपने से रोका जा सकता है.

गाजा नरसंहार में मरने वालों में महिलाएं और बच्चे 70% हैं. घरों, स्कूलों, सड़कों, अस्पतालों, पेयजल ,और सफाई सुविधाओं का 90 प्रतिशत से अधिक का विनाश इजरायल द्वारा जानबूझकर किया गया है. विस्थापन, भुखमरी और बीमारियां के जरिए नरसंहार, इजरायल की एक सोची–समझी रणनीति है. सामाजिक पुनरुत्पादन की क्षमता को नष्ट करना–जो जीवन बनाए रखने का आधार है–इस्राइल के उपनिवेशवादी लक्ष्य का हिस्सा है और नरसंहार का हथियार है.

'इस तथ्य को उजागर करने वाले कुछ भयावह आँकड़े (अक्टूबर 2023–अगस्त 2024)' :

नरसंहार के पहले 100 दिनों में हर घंटे दो माताओं की हत्या. 3,000 से अधिक महिलाएं विधवा हुईं.

गाजा के सबसे बड़े प्रजनन क्लिनिक पर बमबारी में 4,000 भ्रूण नष्ट हुए. 60,000 से अधिक गर्भवती महिलाएं स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित हैं. 700,000 महिलाएं और लड़कियां माहवारी और गर्भनिरोधक के लिए आवश्यक वस्तुओं से वंचित हैं. गर्भपात की दर में 300 प्रतिशत वृद्धि हुई है.

गाजा के बच्चे इजरायली हमलों और घेराबंदी से सबसे ज्यादा प्रभावित हुए हैं–93 प्रतिशत बच्चों को उचित पोषण नहीं मिलता. हर दिन 67 बच्चों की हत्या का औसत. 19,000 से अधिक बच्चे अनाथ या अकेले रह गए हैं.

युद्धविराम के बाद की चुनौतियां

युद्धविराम के बाद भी इजराइल द्वारा गाजा पर जारी घेराबंदी ने भुखमरी को एक हथियार बना दिया है, जिसका सबसे बुरा असर गर्भवती महिलाओं पर पड़ रहा है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (यूएनएफपी) के अनुसार, गाजा में लगभग 46,300 गर्भवती महिलाएं गंभीर भूख से पीड़ित हैं, जबकि यूएन महिला ने अनुमान लगाया है कि 557,000 महिलाएं अत्यधिक खाद्य असुरक्षा का सामना कर रही हैं. कुपोषण के कारण गर्भावस्था के दौरान महिलाओं का वजन कम हो रहा है, जिससे माताओं और उनके अजन्मे बच्चों दोनों के स्वास्थ्य और जीवन के लिए गंभीर खतरा पैदा हो रहा है.

नरसंहार के दौरान सबसे दर्दनाक प्रसंगों में से एक में इजरायल द्वारा हजारों महिलाओं और लड़कियों को उनके घरों से जबरन निकालना था और उन्हें

लगातार गोलीबारी के बीच लगभग 20 से 30 किलोमीटर चलने के लिए मजबूर किया गया, और जब वे युद्धविराम के बाद लौट रहे हैं तो मलबे में अपने प्रियजनों को ढूंढ रही हैं. गाजा नरसंहार ने महिलाओं से उनकी गरिमा, निजता और सुरक्षा छीन ली, और उनके ऊपर भारी शारीरिक और मानसिक बोझ डाल दिया.

घेराबंदी के कारण मासिक धर्म स्वच्छता उत्पादों की कमी ने उनकी कठिनाइयों को और बढ़ा दिया है. महिलाएं गंदे पानी और सीमित डिटर्जेंट के साथ कपड़े धोने और दोबारा उपयोग करने को मजबूर हैं.

गर्भवती महिलाओं के हालात भी उतने ही खराब हैं. सही स्वास्थ्य देखभाल, स्वच्छता, और एनेस्थीसिया की अनुपस्थिति में, बच्चों को जन्म देना उनके लिए जीवन और मौत का प्रश्न बन गया है. यहां तक कि पत्रकार, शिक्षिका, और स्वास्थ्य कार्यकर्ता जैसी सार्वजनिक क्षेत्र की महिलाओं को भी जानबूझकर निशाना बनाया गया.

गाजा की महिलाओं का भविष्य अब भी अंधकारमय है. इजरायल ने सारे अस्पतालों को नष्ट कर दिया है, जिससे स्वास्थ्य देखभाल की कमी और युद्ध के मानसिक आघात के कारण उनकी समस्याएं लंबे समय तक बनी रह सकती हैं. तंत्रिका तनाव, अवसाद, और पोस्ट–ट्रॉमैटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर (PTSD) के मामले तेजी से बढ़ रहे हैं. साथ ही, बुनियादी ढांचे और आजीविका के विनाश के कारण महिलाओं की शिक्षा और रोजगार के अवसर सीमित हो गए हैं.

गाजा की अर्थव्यवस्था और सामाजिक ताने–बाने का फिर से निर्माण करना अनिवार्य है, लेकिन यह तभी संभव होगा जब महिलाओं के अधिकारों को प्राथमिकता दी जाए. युद्ध विराम के बाद महिलाओं को चिकित्सा और मानसिक सहायता कार्यक्रमों की सख्त आवश्यकता है.

गाजा में इजरायल ने महिलाओं के शरीर, घर और परिवार को अपने नरसंहारी अभियान का हिस्सा बना

निशाना बनाया है. उन्हें जीवन की बुनियादी जरूरतों से वंचित कर दिया गया है, और फिलिस्तीनी महिलाओं को असंभव हालात में खुद को ढालने के लिए मजबूर होना पड़ा है. ये महिलाएं, जो साहस और सहनशक्ति की प्रतीक हैं, युद्ध, विस्थापन और अमानवीयता के भयानक अनुभवों के बीच जीवित रहने का उदाहरण बन चुकी हैं. पारंपरिक भूमिकाओं से आगे बढ़कर, जैसे कि साधारण साधनों से खाना बनाना, और संसाधनों का प्रबंधन करना–उन्होंने अपने समाज की रीढ़ के रूप में खुद को स्थापित किया है. इजरायल का इरादा भले ही उन्हें मारने और असहाय बनाने का है, लेकिन फिलिस्तीनी महिलाओं ने अपनी नई भूमिका निभाई है. वे संरक्षिका, पोषणकर्ता और योद्धा के रूप में सामने आई हैं. वे शहीदों और घायलों की मां बन गई हैं.

जो लोग गाजा नरसंहार से अभी तक किसी तरह बच रहे हैं या घायल हैं, उनके लिए स्वास्थ्य सेवाओं का न होना सीधा मौत है, जो पीड़ा को और गहरा करती है. बच्चों पर इसका मनोवैज्ञानिक असर असहनीय है. एक नई संज्ञा–डब्ल्यूसीएनएसएफ (घायल बच्चा, कोई जीवित परिवार नहीं)–डॉक्टरों के बीच आम हो चुकी है. बहुत से बच्चे मरने की इच्छा व्यक्त करते हैं, जो उनके मानसिक आघात की गहराई को दर्शाता है.

गाजा में हुआ यह नरसंहार दिखाता है कि कब्जा करने वाले इजरायल के औपनिवेशिक शासन ने महिलाओं को जानबूझकर निशाना बनाया है.

औपनिवेशिक शासन द्वारा महिलाओं के शरीरों का राजनीतिकरण आकस्मिक नहीं है–यह उनके नरसंहार एजेंडे का मुख्य हिस्सा है. महिलाओं को निशाना बनाकर, कब्जा करने वाली ताकतें फिलिस्तीनी समाज के सामाजिक और पारिवारिक ढांचे को तोड़ने का प्रयास कर रही हैं.

'न्याय और एकजुटता की पुकार'

गाजा की महिलाओं ने अद्वितीय साहस और सहनशक्ति का प्रदर्शन किया है, लेकिन उनकी पीड़ा को सामान्य नहीं माना जा सकता. उनकी कहानियां अंतराष्ट्रीय कार्रवाई की मांग करती हैं क्योंकि इस तरह से महिलाओं को निशाना बनाना युद्ध अपराध है और इजरायल को कटघरे में खड़ा कर जवाबदेही तय करनी होगी. गाजा की महिलाओं का सच्चा न्याय तभी संभव है जब रंगभेदी इजरायल के औपनिवेशिक ढांचे और कब्जे को खत्म किया जाए. इसमें नाकेबंदी को समाप्त करना, अविलंब स्वास्थ्य और शिक्षा तक पहुंच सुनिश्चित करना, और सबसे बढ़कर गाजा के पुनर्निर्माण और उनके आत्मनिर्णय के अधिकार का समर्थन करना शामिल है.

जब तक युद्धविराम के साथ गाजा में जारी घेराबंदी नहीं हटाई जाती, तब तक कोई युद्धविराम महिलाओं, घायलों और बीमारों के लिए ज्यादा राहत नहीं ला सकता. फिलिस्तीनी महिलाओं की मुक्ति, उपनिवेशवाद का अंत और फिलस्तीन की आजादी एक ही संघर्ष का हिस्सा हैं. ●

गतिविधियाँ

उत्तर प्रदेश में महिला हिंसा के खिलाफ ऐपवा का विधान सभा मार्च

अखिल भारतीय प्रगतिशील महिला एसोसिएशन (ऐपवा) के आह्वान पर उत्तर प्रदेश में महिलाओं के ऊपर बढ़ते बलात्कार, हत्या, अपहरण और लूट की शर्मनाक घटनाओं के खिलाफ 24 अक्टूबर को लखनऊ में महिलाएओं ने विधान सभा मार्च निकालकर योगी सरकार की दमनकारी नीतियों के खिलाफ आवाज बुलंद की।

इस प्रदर्शन में उत्तर प्रदेश के कई जिलों से बड़ी संख्या में महिलाएं शामिल हुईं और पुलिस प्रशासन द्वारा महिलाओं को रोकने की कोशिश को धता बताते हुए विधानसभा मार्च निकाला. पुलिस ने महिलाओं को कई बार रोकने की कोशिश की लेकिन महिलाएं आगे बढ़ती गईं और प्रशासन के नाक के नीचे के के. सी. तिराहे पर सभा की।

इस प्रदर्शन में महिलाओं पर हिंसा, बुल्डोजर राज के खिलाफ, बहराइच में अल्पसंख्यकों पर दमन , महंगाई, स्मार्ट बिजली मीटर वापसी, जमीन से गरीबों की बेदखली का विरोध, स्कीम वर्कर्स (आशा, आंगनबाड़ी, रसोइयों) को राज्यकर्मी घोषित करने, जाति जनगणना की गारंटी, जाति उत्पीड़न, विधवा और वृद्धा पेंशन की राशि बढ़ाने, हर गरीब परिवार को 50 किलो अनाज, तेल व अन्य उपयोगी खाद्य पदार्थों की गारंटी करने, मनरेगा में 200 दिन काम और 600 रुपए मजदूरी की गारंटी करने, केजी से पीजी तक की शिक्षा मुफ्त करने, स्वास्थ्य केंद्रों में महिला डाक्टर सुनिश्चित करने, स्वयं सहायता समूह की महिलाओं के सभी कर्जों की माफी, गोंड, बियार, कोल और मुसहर जाति को अनुसूचित जनजाति का दर्जा देने, लखीपुरखीरी में किसानों– मजदूरों को उजाड़ने की साजिश बंद करने, सभी कार्यस्थलों पर महिला सेल की गारंटी करने, सम्मानजनक रोजगार की गारंटी आदि प्रमुख मुद्दे थे।

पढ़ेगी बेटी तभी तो बहादुर बनेगी बेटी का लगा नारा

भारत की प्रथम शिक्षिकाओं सावित्रीबाई फुले और फातिमा शेख को याद करते हुए ऐपवा ने बीएचयू गेट लंका पर शिक्षा अभियान कार्यक्रम आयोजित किया और मांग की कि देश की हर बेटी को केजी से पीजी तक फ्री शिक्षा मिले। गौरतलब है की ऐपवा घरेलू कामगार महिलाओं की बेटियों के साथ शिक्षा जागरण का अभियान लंबे समय से चला रही है।

इस कार्यक्रम में घरेलू कामगार बस्ती से ऐपवा यंग गर्ल्स की छात्राओं ने बड़ी संख्या में भाग लिया। कई छात्राओं ने अपने विचार साझा करते हुए कहा कि गरीबी के कारण उन्हें पढ़ाई बीच में ही छोड़ने पड़ती है, यदि संघर्षों से 12वीं तक की पढ़ाई कर भी लें तो उच्च शिक्षा हासिल कर अपने सपने को पूरा करने का रास्ता हमारे लिए नामुमकिन जैसा है।

विशेष अतिथि के रूप में मौजूद आई आई टी बीएचयू के रिटायर्ड प्रो. असीम मुखर्जी ने कहा कि भारत में आज भी गरीबी के कारण कई लड़कियों को बीच में ही पढ़ाई छोड़नी पड़ती है जो समाज में गैरबराबरी का मुख्य कारण है, इसलिए सस्ती और समान शिक्षा प्रणाली को लागू करना चाहिए।

ऐपवा प्रदेश सचिव कुसुम वर्मा ने कहा शिक्षा समाज की तरक्की का मानक है, उत्तर प्रदेश महिला शिक्षा के क्षेत्र में निचले पायदान वाला प्रदेश है। ऐपवा सहसचिव सुजाता भट्टाचार्य ने कहा की शिक्षा बेटियों को अपने जीवन के बारे में निर्णय लेने में मददगार साबित होती है।

कार्यक्रम में जिलाध्यक्ष सुतपा गुप्ता, जिला उपाध्यक्ष विभा प्रभाकर, शीला, सुनीता, हेमा, छाया, विभा वाही, सुधा, अवधेश आदि ने विचार व्यक्त कि। कार्यक्रम का संचालन जिला सचिव स्मिता ने किया।

उत्तर प्रदेश में लखीमपुर खीरी, पीलीभीत, गाजीपुर, सीतापुर, लखनऊ, कानपुर, बलिया, गोरखपुर समेत 11 जिलों में 3–9 जनवरी तक बहनापा अभियान चला। जिसका नेतृत्व कृष्णा अधिकारी, कुसुम वर्मा, आरती राय, जीरा भारती, मीना सिंह, सरोजनी, गीता पाण्डेय, कमला जी आदि नेताओं ने किया। ●

झारखंड

रात हमारी, सड़क हमारा

सावित्री बाई फुले के जन्मदिन 3 जनवरी से फातिमा शेख के जन्म दिन 9 जनवरी 2025 तक ऐपवा झारखंड ने बहनापा सप्ताह मनाया,

आज जब सरकारी शिक्षा संस्थानों को खत्म किया जा रहा है और शिक्षा महंगी होती जा रही है, ऐसे में आज से लगभग 200 साल पहले जन्मी हमारे देश की पहली महिला शिक्षिकाओं को याद करना जरूरी है जिन्होंने महिला शिक्षा के लिए और ब्राह्मणवाद के खिलाफ समाज से लोहा लिया था।

झारखंड में सावित्रीबाई फुले और फातिमा शेख के जन्म सप्ताह मनाते हुए जागरूकता अभियान चलाया गया।

झारखंड के रांची, रामगढ़, गिरिडीह, हजारीबाग, देवघर, गढ़वा, डाल्टनगंज जिलों में मुख्य रूप से यह बहनापा अभियान चला।

एती तिर्की, शांति सेन और सिंघी खलखो के नेतृत्व में रांची के विभिन्न दलित बस्तियों और आदिवासी बस्तियों की महिलाओं के बीच सावित्री बाईं फुले और फातिमा शेख के जीवन परिचय के साथ आज के परिदृश्य में महिलाओं की स्थिति और चुनौतियों पर चर्चा की गई और स्थानीय मुद्दों पर लड़ाई को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया गया।

रामगढ़ में जिला सचिव नीता बेदिया, सीता बेदिया, झुमा घोषाल और कांति जी के नेतृत्व में ग्रामीण महिलाओं और दलित महिलाओं के बीच में जाकर महिला जागरूकता अभियान चलाया साथ ही विभिन्न सरकारी योजनाओं की जानकारी और उसमें हो रहे भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई की योजना और KG से PG तक मुफ्त शिक्षा की मांग को लेकर कार्यक्रम की योजना बनाई गई।

गिरिडीह जिले में सरिता साव के नेतृत्व में सरिया में बहनापा अभियान कार्यक्रम किया गया। राज धनवार में जयंती चौधरी और पिंकी भारती के नेतृत्व में बहनापा अभियान में महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया गया।

डाल्टनगंज के पांकी में खुशबू जी के नेतृत्व में दलित महिलाओं के बीच बहनापा अभियान कार्यक्रम चला जिसके तहत सभी महिलाएं अपनी बेटियों को पढ़ाने का दृढ़ संकल्प लीं, साथ ही संविधान के द्वारा मिले अधिकारों पर चर्चा हुई, देवघर में ऐपवा राज्य सचिव गीता मंडल और चमेली देवी के नेतृत्व में बहनापा अभियान कार्यक्रम किया गया जिसमें शिक्षा के व्यवसायीकरण के खिलाफ अभियान चलाने का फैसला लिया गया। यहां महिलाओं ने दहेज के खिलाफ लड़ाई को आगे बढ़ाते हुए अपने बच्चों की शादी में दहेज नहीं लेने–देने का संकल्प लिया।

गढ़वा में सुषमा मेहता के नेतृत्व में बहनापा अभियान चला। यहां बलात्कारियों को बचाने की संस्कृति के खिलाफ और मनुवाद को स्थापित करने के खिलाफ अभियान तेज करने का फैसला लिया गया।

झारखंड में हर जगह महिलाओं ने मांग उठाई –

KG से PG तक मुफ्त शिक्षा दो!

महिला रोजगार के अवसर उपलब्ध कराओ !

माइक्रो फाइनेंस नहीं, बिना ब्याज सरकारी लोन उपलब्ध करो !

महिला सुरक्षा लागू करो !

बलात्कारियों को बचाना बंद करो!

पीड़िताओं को दोषी ठहराना बंद करो!

सभी जगह साथियों ने नारा लगाया–

रात हमारी, सड़क हमारा !

नंदिता भट्टाचार्य, रांची

राजस्थान

सावित्रीबाई फुले-फातिमा शेख की साझी विरासत को याद किया

राजस्थान में ऐपवा द्वारा दिनांक 3 से 9 जनवरी 2025 तक सावित्रीबाई फुले–फातिमा शेख की क्रांतिकारी विरासत के साप्ताहिक कार्यक्रम तीन जिलों में आयोजित किए गए। जयपुर, उदयपुर और अजमेर जिलों में आयोजित इस अभियान में महिलाओं की काफी उत्साहजनक भागीदारी हुई।

3 जनवरी को सावित्रीबाई फुले के जन्म दिवस पर उदयपुर में 'आज के दौर में महिला शिक्षा एवं स्वतंत्रता के सवाल' विषय पर एक सेमिनार का आयोजन किया गया। कविता, जोशीले नारे और क्रांतिकारी गीतों से कार्यक्रम की शुरुआत हुई। संचालन ऐपवा की वरिष्ठ साथी प्रोफेसर प्रमिला सिंघवी ने किया। शहर भर से बड़ी संख्या में महिलाओं ने भागीदारी की। प्रो. सोफिया आई. हुसैन, प्रोफेसर हेमेंद्र चंडालिया, माले के राज्य सचिव शंकर लाल चौधरी, डॉ चंद्रदेव ओला, सौरभ नरूका एव अन्य ने भागीदारी की। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए डॉ. मीनाक्षी जैन ने कहा कि आज के चुनौती पूर्ण दौर में, अंधेरे समय को भेदने के लिए जिस वैचारिक ऊर्जा व सोच की दरकार है उसका स्रोत सावित्रीबाई फुले का जीवन और उनका संघर्ष है। सुधा चौधरी ने कहा कि

सावित्रीबाई फुले ने पहली शिक्षिका के रूप में सामाजिक बदलाव का बिगुल बजाया। राज्य सचिव फरहत बानू ने इस अवसर पर कहा कि सावित्रीबाई फुले ने महिला स्वतंत्रता और एक बेहतर दुनिया के निर्माण के संकल्प को साकार करने के लिए अपने जीवन को समर्पित किया।

डॉ. सोफिया ने ऐपवा के इस प्रयास की सराहना करते हुए कहा कि सावित्रीबाई का यह कथन 'कब तक तुम गुलामी की बेड़ियां में जकड़ी रहोगी उठो और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष तेज करो' महिलाओं में शिक्षा व समानता के लिए संघर्ष का प्रतीक बन जाता है। ऐपवा नेता रिंकू परिहार, प्रोफेसर हेमेंद्र चंडालिया तथा अन्य वक्ताओं ने बताया कि आज के दौर में पूंजी, धर्म , सत्ता और सामंती तत्वों का गठजोड़ महिलाओं की हर जायज मांगों और उनके नागरिक अधिकारों को संस्कार– संस्कृति के नाम पर पीछे धकेल रहा है जिसका मुकाबला महिलाएं अपनी सोच और समझदारी से संगठित होकर ही कर सकती हैं।

ऐपवा कार्यकर्ता जुबैदा ने कहा कि सरकारी योजनाओं का लाभ उनकी औपचारिकताओं के चलते जरूरतमंद महिलाओं को नहीं मिल पा रहा है। प्राईवेट धंधों में हिंदू– मुस्लिम के आधार पर इतना ज्यादा भेदभाव है कि घरों में भुखमरी की नौबत आ गई है जिसके चलते जिंदा रहने के लिए महिलाएँ माइक्रो फाइनेंस कंपनियों के बेलगाम ब्याज के जंजाल में फँसती जा रही हैं । दस रुपये किलो में लहसुन छीलने को मजबूर हैं । घरों पर बुलडोजर चलाया जा रहा है। लगातार दहशत और डर भरे वातावरण में जीना पड़ रहा है। गरीबी के चलते लड़कियों को स्कूल नहीं भेज पा रहे हैं।

उदयपुर में प्रत्येक दिन दो बस्तियों में कार्यक्रम हुए जिसमें महिलाओं ने बहुत अधिक रुचि दिखाई। बस्तियों में आयोजित सप्ताह भर के कार्यक्रम का समापन फातिमा शेख की जन्म तिथि 9 जनवरी के कार्यक्रम से हुआ। उदयपुर में ऐपवा का विस्तार इस रूप में दिखा कि तीन नई बस्तियों में पहली बार कार्यक्रम किए गए एवं कुछ नए साथी ऐपवा से जुड़े।

जयपुर में का. मंजूलता के नेतृत्व में ऐपवा की साथी चंदा व समूह की साथियों ने सावित्रीबाई फुले की जन्म तिथि पर कार्यक्रम का आयोजन किया। यहां महिलाओं ने समाज में प्रगतिशीलता लाने के लिए सावित्रीबाई फुले, फातिमा शेख की विरासत को याद किया ।

अजमेर में ऐपवा की जिला सचिव तस्कीन के साथ महिलाओं ने सावित्रीबाई फुले–फातिमा शेख को याद करते हुए बहनापा अभियान चलाया। ●

ऐपवा दिल्ली की संक्षिप्त रिपोर्ट

ऐपवा दिल्ली का चौथा राज्य सम्मेलन 22 सितंबर को सफलतापूर्वक सुरजीत भवन, दिल्ली में संपन्न हुआ। सम्मेलन में दिल्ली के विभिन्न इलाकों और क्षेत्रों से महिलाओं ने भागीदारी की तथा विभिन्न आंदोलनों में संघर्षरत महिलाओं को सम्मानित किया गया। कुल 43 सदस्यों की कार्यकारी समिति तथा 15 सदस्यीय पदाधिकारी टीम तैयार की गई। सम्मेलन के खुले सत्र को पत्रकार निधि सुरेश, नेहा दीक्षित तथा ऐपवा की राष्ट्रीय महासचिव कॉमरेड मीना तिवारी ने संबोधित किया।

सम्मेलन के पश्चात ऐपवा दिल्ली लगातार राजनीतिक पहलकदमियों में सक्रिय रही है और महिला प्रश्नों और अधिकारों को उठाती रही है।

फिलिस्तीन के समर्थन में 7 अक्टूबर को जंतर मंतर पर हुए संयुक्त कार्यक्रम 'नागरिक प्रतिरोध दिवस' में ऐपवा ने बढ़ चढ़कर भागीदारी की। ऐपवा ने दिल्ली में सोनम वांगचुक के भूख हड़ताल और आंदोलन को समर्थन देते हुए, उनसे भेट की और उनके आंदोलन का समर्थन किया। डीटीसी महिलाओं के हड़ताल के समर्थन में ऐपवा ने सरोजनी नगर डिपो में प्रदर्शन में हिस्सा लिया तथा साफ शौचालय, क्रेच सुविधा और रेस्ट रूम की मांग के साथ चल रहे आंदोलन को अपना समर्थन दिया। ऐपवा दिल्ली ने 29 नवंबर को दिल्ली के विभिन्न इलाकों में अंतर्राष्ट्रीय महिला मानवाधिकार दिवस मनाया। ऐपवा दिल्ली में 16 दिसंबर को निर्भया से अभया तक कार्यक्रम में जंतर मंतर पर बढ़ चढ़कर भागीदारी की तथा दिल्ली के विभिन्न इलाकों से अच्छा मोबाइलेजेशन भी किया और यौन हिंसा के खिलाफ आवाज बुलंद की। संसद में गृहमंत्री अमित शाह द्वारा अंबेडकर पर दिए वक्तव्य के खिलाफ ऐपवा ने जंतर मंतर पर संयुक्त प्रदर्शन किया तथा संविधान के पक्ष में अपनी आवाज बुलंद की। ऐपवा दिल्ली ने ऐपवा के राष्ट्रीय आह्वान को दिल्ली में सफल बनाते हुए, विभिन्न इलाकों में सावित्री बाई फुले तथा फातिमा शेख को याद करते हुए, मीटिंग

बिहार

स्थायी रोजगार और कर्जमुक्ति के लिए प्रदर्शन

जीविका समूहों की सभी महिलाओं के स्थाई रोजगार व उनके उत्पाद की सरकारी खरीद, समूह की महिलाओं की बचत राशि से जीविका कैडरों के मानदेय को बंद करने, 2022 तक (कोविड काल) तक के कर्ज की माफी, माइक्रोफाइनेंस कंपनियों द्वारा मनमानी सूद वसूली और किस्त वसूली की प्रताड़ना पर रोक,माइक्रो फाइनेंस कंपनियों पर निर्भरता को खत्म करने, सरकारी समूहों से महिलाओं को उनकी जरूरत के मुताबिक कर्ज देने, झारखंड व अन्य कुछ राज्यों की तरह बिहार में भी सभी महिलाओं को 3000 रुपए मासिक सहायता देने तथा महिलाओं पर अत्याचार, बलात्कार की घटनाओं पर रोक लगाने के लिए लिए पुलिस प्रशासन को जवाबदेह बनाए जाने की मांग पर 28 नवम्बर को बिहार विधानसभा के समक्ष ऐपवा के बैनर तले बिहार के कोने–कोने से आई हजारों की तादाद में महिलाओं ने जुझारू प्रदर्शन किया.

गेट पब्लिक लाइब्रेरी से जुलूस निकालकर यह मार्च गर्दनीबाग धरनास्थल पर पहुंचा और फिर पुलिस द्वारा रोक दिए जाने के बाद सभा में तब्दील हो गया– प्रदर्शनकारी अपनी मांगों को लेकर मुख्यमंत्री से मिलने पर अड़े रहे.

प्रदर्शन को संबोधित करते हुए ऐपवा की राष्ट्रीय महासचिव मीना तिवारी ने कहा कि जीविका समूह की सदस्यों को लाभ न मिलने के कारण समूह धीरे–धीरे निष्क्रिय हो रहे हैं। ऊपर से सरकार महिलाओं की साप्ताहिक जमा राशि से ही कैडर के मानदेय समेत सभी खर्च निकलवाना चाहती है। यह सरासर अन्याय है। उन्होंने आगे कहा कि जीविका समूह की सभी दीदियों को रोजगार और उनके पुराने कर्जों की माफी जरूरी है। सरकार माइक्रोफाइनेंस कंपनियों को छूट देकर बिहार में नई महाजनी व्यवस्था ला रही है। ये कंपनियां गांव–गांव जाकर लुभाने वादे पर पहले कर्ज देती हैं और उसके बाद मनमानी सूद पर साप्ताहिक किस्त जमा करने के लिए महिलाओं को प्रताड़ित करती हैं। घर का सामान उठा लेना, मवेशी खोल लेना और महिलाओं के साथ गाली–गलौज इन कंपनियों की सामान्य कार्य प्रणाली है। इनकी प्रताड़ना के कारण बिहार के कई जिलों में महिलाओं की आत्महत्या और पलायन जैसी घटनाएं हो रही हैं।

कहा कि झारखंड और महाराष्ट्र की तरह बिहार में भी एक योजना लाकर सभी महिलाओं को सरकार 3000 रु. महीने सहायता राशि दे।

सभा को महासचिव मीना तिवारी के अलावा विधान पार्षद शशि यादव, अध्यक्ष सोहिला गुप्ता, सचिव अनीता सिन्हा, संगीता सिंह, शबनम खातून, इंदू सिंह, माधुरी गुप्ता, सावित्री गुप्ता, अनुराधा देवी, प्रेमा देवी, रीता बरनवाल, रानी प्रसाद, शनीचरी देवी, सुलेखा देवी, वंदना सिंह, रेणु देवी, मालती राम, अफ्शा जबीं, नसरीन, संध्या पाल, लीला वर्मा, विभा गुप्ता तथा भाकपा–माले विधायकों समेत कई वक्ताओं ने संबोधित किया। ●

कर्नाटक

अमित शाह की टिप्पणी के खिलाफ मैसूर में प्रदर्शन'

संविधान निर्माता डॉ. बी.आर. अंबेडकर के खिलाफ केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह की टिप्पणी के विरोध में दलित और पिछड़े वर्गों के संगठनों तथा 'प्रोग्रेसिव ऑर्गनाइजेशन फोरम' द्वारा 7 जनवरी 2025 को बुलाए गए मैसूर बंद का जनता का भरपूर समर्थन मिला.

कार्यकर्ताओं ने विभिन्न स्कूलों, कॉलेजों, बैंकों, पेट्रोल पंपों, सिनेमा हॉल, होटल–रेस्तरां, दफ्तरों और दुकानों का दौरा कर बंद के लिए समर्थन मांगा. शहर के अधिकांश हिस्सों में दुकानें और व्यापारिक प्रतिष्ठान बंद रहे. प्रदर्शनकारियों ने अमित शाह का पुतला जलाकर प्रतीकात्मक अंतिम संस्कार किया, जिसे पुलिस ने जल्द ही बुझा दिया.

प्रदर्शनकारियों ने संविधान की प्रस्तावना पढ़ी और एक जुलूस निकाला, जो टाउन हॉल में सार्वजनिक सभा में समाप्त हुआ.

प्रदर्शन में सर्वसम्मति से गृह मंत्री अमित शाह से इस्तीफे की मांग की गई. वक्ताओं ने कहा कि अमित शाह ने संविधान का अपमान किया है और उन्हें पद पर बने रहने का नैतिक अधिकार नहीं है. वे उसी संविधान के चलते गृह मंत्री बने हैं, लेकिन जब उन्हें संविधान और अंबेडकर के प्रति सम्मान नहीं है, तो उन्हें अपने पद से इस्तीफा देना चाहिए.

इसके अलावा, प्रदर्शन में केंद्र सरकार पर किसानों की समस्याओं के प्रति असंवेदनशीलता का आरोप भी लगाया गया. किसानों का प्रदर्शन 300 दिनों से अधिक समय से चल रहा है, जिसमें करीब 700 किसानों ने अपनी जान गंवाई है. मणिपुर में हिंसा हो रही है, जहां लोगों की आवाज को दबाया जा रहा है. संसद में जनहित और विकास के मुद्दों पर चर्चा नहीं होती, बल्कि देश के उच्च पदों का इस्तेमाल संविधान के निर्माताओं का अपमान करने के लिए किया जा रहा है.

इस प्रदर्शन में पूर्व महापौर, सफाई कर्मचारी संगठन, पिछड़ा वर्ग संगठन, दलित संघर्ष समिति, किसान संगठन, पीयूसीएल, कर्नाटक महिला उत्पीड़न विरोधी मंच और ऐपवा समेत कई संगठनों ने भाग लिया. ●

PRN-PT / 662013

R.No. - 52401 / 91

बोल के लब आज़ाद है तेरे

प्रदेश में रिकार्ड तोड़ रही महिला उत्पीडन की घटनाएं

उपजिलाधिकारी कार्यालय पर ऐपवा का प्र

स्वतंत्र भारत संवाददाता, लखनऊ। अखिल भारतीय प्रगतिशील महिला एसोसिएशन (ऐपवा) ने बीकेटी पुलिस की निष्क्रियता और अपराधियों को खुली छूट देने के खिलाफ बीकेटी स्थित उपजिलाधिकारी कार्यालय में विरोध प्रदर्शन किया और मुख्यमंत्री को सम्बोधित दो सूत्रीय मांगपत्र उपजिलाधिकारी सतीश चन्द्र त्रिपाठी को सौंपा। पूर्व घोषित कार्यक्रम के तहत ऐपवा की राज्य कार्यकारिणी की सदस्य सरोजिनी बिष्ट और जिला सहसंयोजिका कामरेड कमला गौतम के नेतृत्व में बड़ी संख्या में महिलाओं

ऐपवा ने सावित्रीबाई व फाति शेख की मनाई जंयती

জাজৰিত স্মাৰ্ট মিটাৰৰ বিৰুদ্ধে প্ৰতিবাদ

मीना तिवारी द्वारा शुभम प्रिन्टर्स से मुद्रित और प्रकाशित

आधी जमीन कार्यालय

रामनरेश राम-चंद्र शेखर स्मृति भवन, जगत नारायण रोड, कदम कुआँ, पटना – 800003, E-mail : aadhizameen@gmail.com